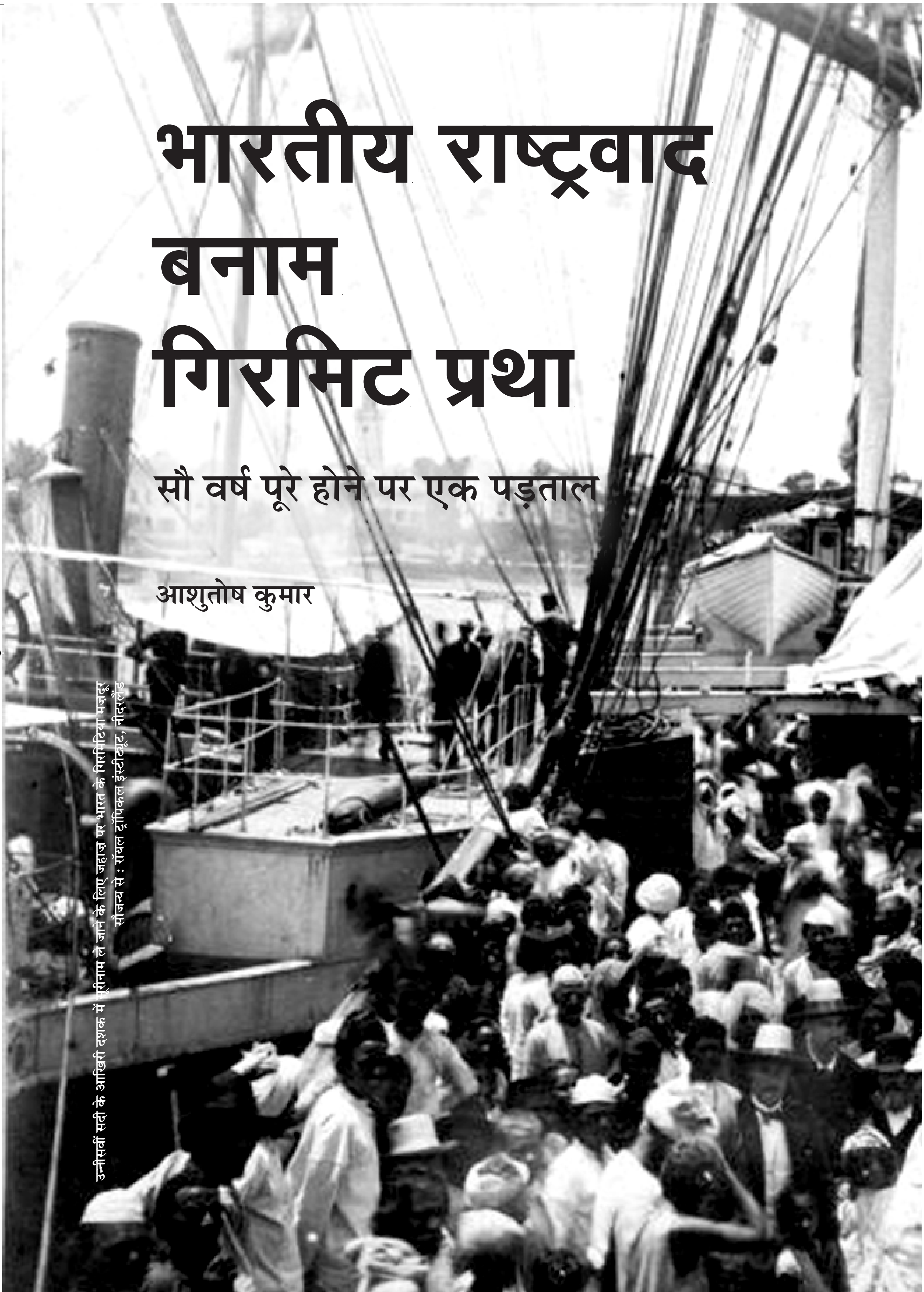
भारतीय राष्ट्रवाद बनाम गिरमिट प्रथा

सौ वर्ष पूरे होने पर एक पड़ताल

आशुतोष कुमार



उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशक में सूरीनाम ले जाने के लिए जहाज़ पर भारत के गिरमिटिया मज़दूर।
सौजन्य से : रॉयल ट्रॉपिकल इंस्टीट्यूट, नीदरलैंड

भारत सरकार प्रतिवर्ष प्रवासी भारतीय दिवस मनाती है। प्रवासी भारतीयों अर्थात् समुद्रपार के विभिन्न देशों में बसे भारतीयों का शुरुआती इतिहास समझने के लिए हमें औपनिवेशिक काल की प्रवास नीति को समझना होगा। उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में जब ब्रिटिश संसद ने अपने साम्राज्य में दास-प्रथा को ग़ैर- क़ानूनी घोषित कर दिया तब दुनिया के विभिन्न टापुओं और देशों में स्थापित पूँजीवादी बाग़ानों में मज़दूरों की घोर कमी महसूस होने लगी। दासता के उन्मूलन ने बाग़ानी व्यवस्था की रीढ़ को ही तोड़ दिया। फलत: अंग्रेज़ पूँजीपति बाग़ान मालिकों ने मज़दूर आपूर्ति की एक वैकल्पिक व्यवस्था की खोज शुरू की। इसी क्रम में उनका ध्यान भारत की ओर गया जहाँ सस्ते कृषक मज़दूर उपलब्ध थे और जिन्हें गन्ना उत्पादन की अच्छी जानकारी भी थी। इस तरह 1834 में शर्तबंदी मज़दूरी प्रथा अर्थात् कुली प्रथा की शुरुआत हुई। शर्तबंदी के तहत जाने वाले मज़दूरों ने इसे 'गिरमिट' का नाम दिया और 'गिरमिट' प्रथा के तहत जाने वाले प्रवासी मज़दूर 'गिरमिटिया' कहलाए।[1] 1834 से 1917 के बीच तेरह लाख से भी ज़्यादा भारतीय किसान मॉरिशस, त्रिनिडाड, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका, फ़ीजी आदि द्वीपों में गन्ना उत्पादन के लिए गये। शर्तबंदी के मुताबिक़ उन्हें बाग़ानों में पाँच वर्ष तक काम करना था और अन्य पाँच वर्ष तक औद्योगिक मज़दूर के रूप में स्वतंत्र रूप से काम करने के बाद नि:शुल्क भारत लौट आने की सुविधा दी गयी थी। अनुबंध समाप्ति के बाद कुछ मज़दूर भारत लौट आये किंतु बहुसंख्य लोगों ने वहीं रह कर एक नये जीवन की शुरुआत की। आज प्रवासी भारतीयों का एक विशाल वर्ग उन्हीं गिरमिटिया भारतीयों के वंशज हैं।

गिरमिट प्रथा 1834 में शुरू हुई और एक बड़े राष्ट्रवादी आंदोलन के पश्चात् मार्च, 1917 में ख़त्म हो गयी। इसकी समाप्ति के सौ वर्ष पूरे होने के अवसर पर उस परिघटना को याद करता हुआ यह लेख उस राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति की पड़ताल करता है। 1830 के दशक के शुरुआत में गिरमिट प्रथा के आरम्भ के साथ ही इसके ख़िलाफ़ गोलबंदी भी शुरू हो गयी थी। मानववादियों और ब्रिटिश दास-प्रथा विरोधियों ने इसकी मुख़ालफ़त करते हुए इसे दास प्रथा का ही नया अवतार बताया। ये लोग 1870 के दशक तक लगातार इसका विरोध करते रहे लेकिन इनके विरोध के बावजूद गिरमिट प्रथा थोड़े बहुत संशोधनों के साथ चलती रही। किंतु बीसवीं सदी के पहले दशक से भारतीय राष्ट्रवादी भी गिरमिट प्रथा के बहाने औपनिवेशिक शासन की आलोचना करते हुए इसके उन्मूलन के लिए आंदोलन करने लगे। इस लेख में गिरमिट या प्रवास पर आधारित राष्ट्रवादी विमर्श की पड़ताल की गयी है तथा इसमें निहित उपनिवेश विरोधी आंदोलन तथा भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के वर्ग और जाति आधारित पूर्वग्रहों को भी खोजा गया है। इस लेख में यह बताया गया है कि बीसवीं सदी के प्रथम दशक से पहले भारतीय गिरमिटियाओं का सवाल राष्ट्रवादी विमर्श का मुख्य सरोकार नहीं था और बीसवीं सदी के दूसरे दशक में ही यह एक सार्थक आंदोलन के रूप में उभर सका। इस लेख में गिरमिट प्रथा विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलन के रूप-रंग की बारीक़ पड़ताल की गयी है। गिरमिटिया प्रवास के ख़िलाफ़ लड़ने का राष्ट्रवादी आंदोलन का सार्वजनिक दावा, गिरमिटियाओं के सवाल का व्यापक उपनिवेश विरोधी एजेंडे में समावेशन और गिरमिटिया प्रवास विरोधी आंदोलन में स्त्रियों की केंद्रीयता के माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि इस प्रथा की शोषक प्रवृतियों का विरोध राष्ट्रवादी विमर्श का गौण सरोकार था। दरअसल, उसने अपनी व्यापक राजनीतिक जरूरतों के लिए इस प्रश्न का इस्तेमाल किया।

दक्षिण अफ़्रीका और प्रवासी भारतीय

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का गिरमिट विरोधी अभियान का पूर्व इतिहास दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के अनुभव से जुड़ा था। दक्षिण अफ़्रीका ब्रिटेन का एक उपनिवेश था जहाँ बड़ी संख्या में गिरमिटिया

---

[1] 'गिरमिट' शब्द अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट का भोजपुरीकरण है. शर्तबंदी के तहत होने वाले एग्रीमेंट को ही अनपढ़ मज़दूर किसानों ने गिरमिट कह दिया और इसके तहत जाने वाले प्रवासी 'गिरमिटिया' कहलाए. यद्यपि गिरमिटिया शब्द का प्रयोग फ़ीज़ी प्रवासियों द्वारा ही किया गया था, लेकिन हाल के वर्षों से गिरमिट तथा गिरमिटिया शब्द का प्रयोग शर्तबंदी प्रथा तथा उसके अधीन दुनिया के अनेक द्वीपों में जाने वाले सभी प्रवासी भारतीय मज़दूरों के लिए किया जा रहा है.

मज़दूरों, भारतीय व्यापारियों व व्यवसायियों ने प्रवास किया था। इन व्यापारियों में अधिसंख्य गुजरात, बम्बई और मद्रास के थे। इनमें दुकानदार और फेरीवाले से लेकर अमीर सौदागर तक सभी सम्मिलित थे।[2] इन स्वतंत्र व्यवसायियों ने अपने हमवतन गिरमिटिया मज़दूरों से कोई संबंध नहीं स्थापित किया। अपने गिरमिटिया मज़दूर भाइयों की विकट परिस्थिति से उन्हें कोई मतलब नहीं था। वे ख़ुद को उन मज़दूरों से श्रेष्ठ समझते थे।[3]

दक्षिण अफ्रीका के इन स्वतंत्र भारतीय व्यापारी समुदाय को पहला राजनीतिक झटका तब 1894 में लगा जब नटाल की विधायिका ने इन भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने का क़ानून पास कर दिया। मोहनदास करमचंद गाँधी उस समय एक गुजराती व्यापारी की क़ानूनी मामलों में सहायता के लिए दक्षिण अफ्रीका में ही थे। उन्होंने इस नये क़ानून के ख़िलाफ़ लड़ने का मन बनाया। गाँधी लिखते हैं कि उन्होंने इस भेदभाव के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए नटाल इण्डियन कांग्रेस की स्थापना की और दस हज़ार लोगों के हस्ताक्षर वाला एक आवेदन लंदन में उपनिवेश मामलों के सचिव लॉर्ड रिपन के पास भेजा जिन्होंने अंततः नटाल की विधायिका द्वारा पारित भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने वाले क़ानून को ख़ारिज कर दिया।[4] नटाल इण्डियन कांग्रेस मुख्य रूप से अनानुबंधित भारतीय व्यापारियों के हितों से सरोकार रखती थी क्योंकि मताधिकार से वंचित करने वाला क़ानून इन्हीं के हितों को प्रभावित करता था।[5]

गाँधी के आंदोलन के दौरान ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के ख़िलाफ़ होने वाले भेद भाव के मुद्दे को उठाया। नटाल की विधायिका में भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने वाले क़ानून के पास होने के तत्काल बाद 1895 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसके ख़िलाफ़ प्रस्ताव पास किया। 1895 में पुणे कांग्रेस में बोलते हुए परमेश्वरम पिल्लै ने कहा :

> सबको 'कुली प्रवासी' का दर्जा देकर नटाल की सरकार ने भारतीयों के विभिन्न वर्गों में अंतर नहीं किया ... हमारे बहुत से भाई, जो धन और मतदान की क़ाबिलियत में श्वेतों के बराबर हैं, को मताधिकार से वंचित कर उन्हें और भी अशक्त *सिर्फ़ इस कारण से बना दिया गया कि कुछ भारतीयों को वहाँ कुली का काम करना पड़ता है।*[6]

पिल्लै और दूसरे शुरुआती राष्ट्रवादी गिरमिटिया मज़दूरों की परिस्थितियों से दुखी नहीं थे, बल्कि उनकी दिक़्क़त यह थी कि सम्भ्रांत, अमीर और स्वतंत्र भारतीयों के साथ भी कुली का काम करने वालों जैसा व्यवहार किया जा रहा था। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा सुधार पर ध्यान देने के बजाय 'भारतीय कुलियों' को ही समस्या के रूप में देखा गया। क्योंकि उनके अनुसार इन कुली भारतीयों के कारण ही स्वतंत्र भारतीय व्यवसायियों और मध्यवर्ग के प्रवासियों को दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिक क्षितिज पर वैसा ही निकृष्ट व्यवहार और प्रतिबंध झेलना पड़ रहा था। अतः भले ही यह क़ानून व्यापारी भारतीय समुदाय के ख़िलाफ़ नस्ली दुराग्रह से युक्त था, लेकिन इसका विरोध जिस आधार पर किया गया उसमें प्रवासी भारतीय समुदायों में विद्यमान जाति और हैसियत संबंधी ऊँच-नीच की भावना गहराई से पैठी हुई थी।

---

[2] एम.के.गाँधी (1927) : 93 -102.

[3] सुरेंद्र भाना (1991) : 116.

[4] एम.के.गाँधी (1924/2009) : 53-55.

[5] गाँधी ने अपनी किताब में कहा है कि नटाल इण्डियन कांग्रेस का गठन नटाल विधायिका के उस क़ानून के ख़िलाफ़ किया गया था जिसने भारतीय व्यापारियों को उस किसी भी राजनीतिक अधिकार से वंचित कर दिया था और इस संगठन का भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों के अधिकारों से संबंध नहीं था. इस क़ानून ने नटाल के सभी अनानुबंधित भारतीयों को प्रभावित किया था. देखें, वही; सुरेंद्र भाना (1991), वही.

[6] परमेश्वरम पिल्लै (1896) : 106-7. ज़ोर मेरा.

1896 में भारत यात्रा के दौरान गाँधी ,ने दक्षिण अफ़्रीका में नस्ली भेदभाव के ख़िलाफ़ भाषण दिया तथा उसी साल बम्बई की एक सभा में इस मुद्दे को उठाते हुए कहा कि, 'यूरोपीय आम सहमति के मुताबिक़ बिना किसी अपवाद के सभी भारतीय कुली हैं।' उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा, 'दुकानदार 'कुली दुकानदार' हैं। भारतीय क्लर्क और स्कूल मास्टर क्रमशः 'कुली क्लर्क' और 'कुली स्कूल मास्टर' हैं। स्वाभाविक रूप से न तो व्यापारी से और न ही अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय से अच्छा व्यवहार किया जाता है।'[7] इसी तरह मद्रास की एक सभा में उन्होंने कहा 'बिना किसी अपवाद के सभी भारतीयों को घृणापूर्वक कुली कहा जाता है'।[8] गाँधी तथा दूसरे राष्ट्रवादी दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के ख़िलाफ़ होने वाले भेदभाव को नस्लवाद के रूप में देखते थे लेकिन इसका यह मतलब नहीं था कि वे लोग जाति और वर्ग के अपने पूर्वग्रहों से मुक्त हो गये थे। 1901 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के प्रति होने वाले नस्ली भेदभाव का मुद्दा उठाते हुए स्वयं गाँधी ने जो तर्क दिया वह सम्भ्रांत और सवर्ण आग्रह से युक्त है :

> महानुभावो, यूरोपीय उपनिवेशवादियों के भारत विरोधी व्यवहार में निहित भारत विरोधी भावना के ख़िलाफ़ पूरे दक्षिण अफ़्रीका में शिकायत का स्वर उठा है। शिकायत की दूसरी श्रेणी का कारण दक्षिण अफ़्रीका के चारों उपनिवेशों में लागू भारत विरोधी विधान में निहित भारत विरोधी भावना है। शिकायत की पहली श्रेणी का उदाहरण यह है कि सभी भारतीयों को, चाहे वो कोई भी हो, कुली का दर्जा दे दिया गया है। यदि हमारे आदरणीय अध्यक्ष (दिनशा वाचा) को भी दक्षिण अफ़्रीका जाना हो तो मुझे डर है कि उन्हें भी कुली का दर्जा दे दिया जाएगा।[9]

अतः भारतीय राष्ट्रवादी जब अनानुबंधित भारतीय व्यापारिक समुदाय के ख़िलाफ़ नटाल सरकार के क़ानून को नस्लवादी बता कर विरोध कर रहे थे, उसी समय वे गिरमिटिया और अनानुबंधित भारतीयों के बीच भेद भी कर रहे थे और हैसियत के हिसाब से दूसरे को पहले से उच्चतर मान रहे थे। इस प्रकार यद्यपि 1902 में अहमदाबाद अधिवेशन में गिरमिटिया भारतीयों का मुद्दा पुनः सामने आया और 1904 से दक्षिण अफ़्रीका के अलावा दूसरे क्षेत्रों के गिरमिटिया मज़दूरों का मुद्दा भी कांग्रेस की कार्यवाही का हिस्सा बनने लगा, लेकिन बीसवीं सदी के पहले दशक तक गिरमिट प्रथा तथा गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याएँ उनका मुख्य सरोकार नहीं बन सकीं। इसके पहले स्वतंत्र भारतीय व्यवसायी समुदाय के प्रति होने वाला भेदभाव ही गाँधी और दूसरे राष्ट्रवादियों की आलोचना का मुख्य केंद्र था। गाँधी व अन्य राष्ट्रवादियों की आलोचना में गिरमिटिया मज़दूरों या 'कुलियों' का ज़िक्र स्वतंत्र व्यापारी भारतीय समुदाय की निम्नतर हैसियत को संदर्भ प्रदान करने हेतु ही आया। वहाँ इस बात पर बल दिया गया कि कुली भारतीयों के हमवतन होने के कारण ही स्वतंत्र भारतीय व्यापारी समुदाय को भी निम्न दृष्टि से देखा गया। तभी इस समय गाँधी और दूसरे भारतीय राष्ट्रवादियों ने सभी भारतीयों को एक ही वर्ग के रूप में देखने की अफ़्रीकी श्वेतों की सांस्थानिक प्रवृति की तीखी आलोचना की। जब गाँधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को दक्षिण अफ़्रीका में व्यापारी भारतीयों के लिए बराबरी के सुलूक की सरकार से कोई उम्मीद नहीं दिखी तो उन्होंने समझौते के लिए दूसरे रास्ते खोजे। उन्होंने सोचा कि यदि गिरमिटिया मज़दूरों की आवक को रोका जा सके तो नटाल की समृद्धि घटने लगेगी और इससे अधिकारी समझौतापरक रुख़ अपनाने के लिए विवश हो जाएँगे। 1905 में जब वे एक सीमित प्रयास में ऐसा करने में विफल हो गये तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास कर भारत सरकार और ब्रितानी सरकार से नटाल के लिए गिरमिटिया मज़दूरों की भर्ती रोकने को कहा।

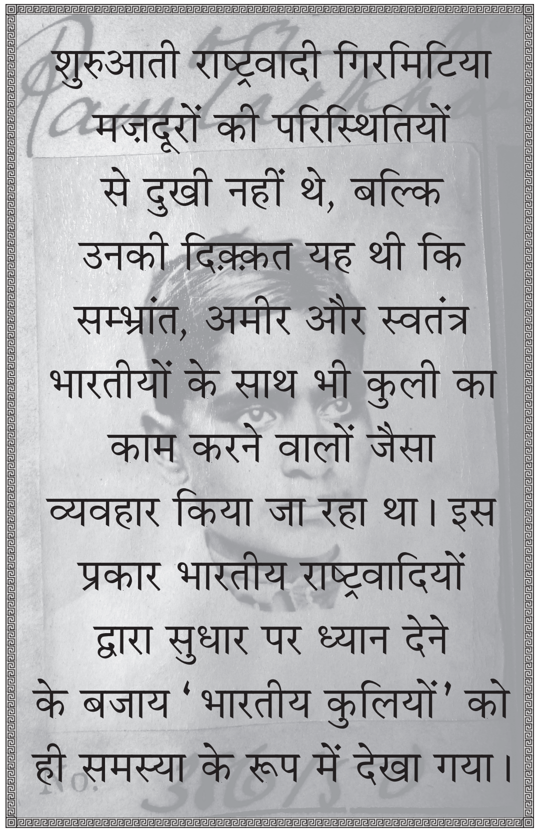
---

[7] *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी* (आगे से सीडब्ल्यूएमजी), खण्ड 2 : 409, 'स्पीच एट बॉम्बे ऑन 26-09-1896'.

[8] वही : 428, 'स्पीच एट मद्रास ऑन 26.10.1896'.

[9] *सीडब्ल्यूएमजी,* खण्ड 11, 1897-1902, 'स्पीच एट कलकत्ता कांग्रेस' : 429. इसके अलावा देखें, *रिपोर्ट ऑफ़ सेवेंटींथ आल इण्डियन नैशनल कांग्रेस* (आगे से एआईएनसी), कलकत्ता, 1901.

इसी बीच 1906 में गाँधी ने दक्षिण अफ़्रीका में सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत की। इतिहास-लेखन की प्रभुत्वशाली धारा के मुताबिक़ गाँधी के आंदोलन का लक्ष्य घृणित गिरमिटिया प्रथा का उन्मूलन था। ह्यूग टिंकर का मानना है कि दक्षिण अफ़्रीका में गाँधी का आंदोलन भारतीयों की स्थिति को बेहतर करने के लिए था, विशेष रूप से गिरमिटिया मज़दूरों की स्थिति को बेहतर करने के लिए, और गाँधी ही थे जिन्होंने गिरमिट प्रथा पर सवाल उठाया। टिंकर के अनुसार, 'गाँधी दक्षिण अफ़्रीका के अपने प्रवासी हमवतनों की समस्या को राजनीतिक रूप से सचेत भारतीयों के मन में एक ज्वलंत प्रश्न के रूप में उभारने में सफल हो गये।'[10] वे आगे कहते हैं कि सत्याग्रह आंदोलन के दौरान गाँधी ने अपनी पोशाक भी बदल दी थी ताकि वे गिरमिटिया मज़दूर की तरह दिख सकें।[11] लेकिन दक्षिण अफ़्रीका में गाँधी के सत्याग्रह के बारे में थोड़ा-सा सचेत अध्ययन करते ही दूसरे निष्कर्ष सामने आते हैं। 1906-13 के दौरान गाँधी ने अपने आंदोलन को कुछ ख़ास मुद्दों पर केंद्रित किया— जैसे प्रत्येक अनानुबंधित भारतीय के लिए तीन पौंड का सालाना लाइसेंस टैक्स, भारतीयों के दक्षिण अफ़्रीका के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में जाने या बसने को प्रतिबंधित करने वाला क़ानून और भारतीयों के पारम्परिक शादियों को राज्य द्वारा मान्यता न देना। यद्यपि दक्षिण अफ़्रीकी सरकार के बनाए इन क़ानूनों के ख़िलाफ़ गाँधी के आंदोलन का अप्रत्यक्ष संबंध गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याओं और आज़ाद भारतीयों के साथ भी था, तथापि 1913 से पहले उन्होंने भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याओं के प्रति अपना प्रत्यक्ष सरोकार व्यक्त नहीं किया। जून, 1913 में हरमन कालेनबाक को लिखे एक गुप्त पत्र में गाँधी ने लिखा कि उन्होंने 'अपने मन में गिरमिटिया लोगों के लिए कुछ करने की ठान ली है।'[12] हालाँकि गाँधी द्वारा कालेनबाक और दूसरे मित्रों को लिखे पत्रों से पता चलता है कि 1913 में हुई दक्षिण अफ़्रीका की व्यापक हड़ताल गाँधी से प्रभावित नहीं थी, बल्कि तीन पौंड सालाना वाले लाइसेंस कर के ख़िलाफ़ हुए आंदोलन में गिरमिटिया मज़दूरों की भागीदारी स्वत:स्फूर्त थी।[13] इसी तरह यदि हम गाँधी के सत्याग्रह का अंतिम परिणाम देखें तो ज्ञात होता है कि गाँधी ने अपना सत्याग्रह एक समझौते के तहत समाप्त कर दिया और इस समझौते में वे क़ानूनी बराबरी के उस लक्ष्य को पाने में विफल रहे जिसके लिए उन्होंने इस संघर्ष



रामलखन (उम्र 15 वर्ष), कुली नं. 386150, मॉरिशस
सौजन्य से : महात्मा गाँधी इंस्टीट्यूट, मोका, मॉरिशस

---

[10] ह्यू टिंकर (1974) : 288.
[11] वही : 303.
[12] सी.एफ.जोसफ़ लेलीवेल्ड (2011) : 108.
[13] वही : 110-12.

की शुरुआत की थी। भारतीय अभी भी राजनीतिक अधिकारों से वंचित थे और उन्हें दक्षिण अफ़्रीका के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने के लिए अनुमति की ज़रूरत थी। इण्डियन रिलीफ़ एक्ट, जिसे गाँधी ने 'ब्लैक एक्ट' कहा था, से गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याएँ कम नहीं हुईं जबकि ये मज़दूर ही हड़ताल और जुलूस की मुख्य ताक़त थे। इस प्रकार, जैसा कि जोसफ़ लेलीवेल्ड ने भी निष्कर्ष निकाला है, गिरमिटिया प्रथा का उन्मूलन दक्षिण अफ़्रीका में गाँधी के सत्याग्रह का घोषित लक्ष्य कभी नहीं था और न ही उनके आंदोलन ने भारतीय अनुबंधित मज़दूरों की समस्याओं को भौतिक रूप से प्रभावित किया।[14]

यद्यपि भारतीय कुली दक्षिण अफ़्रीका में चलने वाले राजनीतिक आंदोलन के केंद्र में नहीं थे, तथापि राष्ट्रवादी विमर्श में उनको शामिल करने से गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याएँ भारतीय सार्वजनिक जीवन का अंग बनीं। बहुत से अख़बार उपनिवेशों में काम करने वाले प्रवासियों की समस्याओं को प्रमुखता से छापने लगे। उदाहरण के लिए इलाहाबाद से प्रकाशित *स्वराज* के संवाददाता ने 22 अगस्त, 1908 को 'इज़ स्लेवरी इंटायरली सप्रेस्ड?' शीर्षक से इस मुद्दे पर लिखते हुए शिकायत की कि मॉरिशस में भारतीय कुलियों के साथ बहुत बुरा बर्ताव होता है और जिस अनुबंध पत्र पर वे हस्ताक्षर करते हैं वह दास प्रथा का ही परिष्कृत रूप है। उसने आगे लिखा कि कोई कुली मजिस्ट्रेट और यूरोपीयों से न्याय की उम्मीद नहीं कर सकता। उस अख़बार ने मॉरिशस में रहने वाले अपने देशवासियों के लिए भारतीयों को आंदोलन शुरू करने की सलाह दी।[15] इसी तरह मॉरिशस में भारतीय कुलियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को लेकर *स्वराज* में छपे एक पत्र के जवाब में इलाहाबाद के ही *अभ्युदय* ने 11 अक्टूबर, 1908 के अंक में मॉरिशस और दूसरे उपनिवेशों में भारतीयों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार की जाँच और रपट के लिए सरकार को तीन सदस्यों की एक कमेटी बनाने का सुझाव दिया जिसमें एक सरकारी और दो ग़ैरसरकारी भारतीय शामिल हों। इस कमेटी से यह भी अपेक्षा थी कि वह विदेश में रह रही भारतीय प्रजा के प्रति अच्छे व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए कुछ सुझाव देगी जिससे सरकार इण्डियन एमिग्रेशन एक्ट के प्रावधान व्यवहार में ठीक से लागू कर सके। इसी लेख में इस समस्या का निदान बताते हुए सम्पादक ने सरकार और अग्रिम पंक्ति के नेताओं से भारत में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए क़दम उठाने की सलाह दी ताकि भारतीय मज़दूर अपने देश में ही रोज़गार प्राप्त कर सके और उन्हें दूसरे उपनिवेशों में प्रवास न करना पड़े जहाँ उन्हें अनेक कठिनाइयों और मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।[16]

बीसवीं सदी की शुरुआत में गिरमिटिया मुद्दे पर भारतीय प्रेस का रवैया टकराव वाला था। प्रेस ने न सिर्फ़ हत्या, आत्महत्या और औपनिवेशिक न्यायालयों द्वारा विभिन्न अधिनियमों के तहत बड़ी संख्या में फाँसी तथा जेल की सज़ा की ख़बरों को प्रमुखता दी, बल्कि औपनिवेशिक न्याय के तरीक़ों पर भी सवाल उठाया। इलाहाबाद से छपने वाले अंग्रेज़ी दैनिक *द इण्डियन पीपुल* ने 13 सितम्बर, 1908 को दक्षिण अफ़्रीका में एक भारतीय को फाँसी की सज़ा दिये जाने पर टिप्पणी करते हुए लिखा :[17]

> कितनी देर, ओह! इस तरह कब तक चलता रहेगा? ब्रिटेन के लोगों का न्याय और ईमानदारी के प्रति लगाव सचमुच कल्पना मात्र है या कहीं ऐसा तो नहीं कि ईश्वर से डरने वाली अंग्रेज़ों की मज़बूत जाति दिवंगत हो रही है? यदि दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार होता रहा जैसा कि अभी हो रहा है तो हिंसा अधिनियम की प्रेरणा, भारतीय दण्ड संहिता का देशद्रोह

---

[14] वही : 129–30.

[15] *रिपोर्ट ऑन नेटिव न्यूज़पेपर्स* (आगे से आरएनएन), यूपी, अगस्त, 1908.

[16] आरएनएन, यूपी, सितम्बर, 1908 : ऐसा लगता है कि सम्पादक ब्रिटेन के दास-प्रथा विरोधियों के विचार से प्रभावित हैं जो मज़दूरों को भेजने के बजाय स्वदेश में ही रोज़गार पैदा करने की ज़रूरत पर बल देते थे.

[17] आरएनएन, यूपी, अक्टूबर 1908.

> उपखण्ड तथा अपराधी व्यवहार संहिता का 'अच्छा व्यवहार' उपखण्ड के रहते हुए भी भारतीय प्रायद्वीप की मिट्टी में अतिवाद भड़क उठेगा।

लखनऊ से निकलने वाले अख़बार *दी एडवोकेट* ने 1 अक्टूबर, 1908 के अपने अंक में नटाल में बड़ी संख्या में गिरमिटिया मज़दूरों की आत्महत्या का ज़िक्र करते हुए विदेश में मज़दूरों की हालत की सही जानकारी के लिए और उपनिवेशों में मज़दूरों की देखभाल के लिए सरकार को एक प्रवासी बोर्ड बनाने की सलाह दी। अपने निष्कर्ष में सम्पादक लिखता है :

> नटाल में आज़ाद भारतीयों के लिए विकट परिस्थितियों में भारत सरकार की ज़िम्मेदारी अनिवार्य रूप से बढ़ गयी है। इस अवसर पर एक तीखा स्मरण पत्र टॉनिक की तरह काम कर सकता है।

भारतीय प्रेस में गिरमिट प्रथा के ख़िलाफ़ निरंतर प्रबल होती आवाज़ के आलोक में ही प्रमुख राष्ट्रवादी गोपाल कृष्ण गोखले ने इस प्रथा के उन्मूलन के लिए सरकार पर दबाव बनाया। नाइंसाफ़ी के शिकार गिरमिटिया मज़दूरों की हालत से ज़्यादा उनके राजनीतिक इस्तेमाल में स्पष्ट रुचि रखने वाले गोखले ने सलाह दी कि व्यवसायी स्वतंत्र भारतीयों की बेहतरी हेतु नटाल के लिए मज़दूरों की भर्ती को रोकने का इस्तेमाल समझौते के लिए किया जा सकता है। ब्रिटिश भारत में नटाल के लिए गिरमिटिया मज़दूरों की भर्ती रोकने के लिए 25 फ़रवरी, 1910 को गोखले लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रस्ताव लेकर आये और कहा कि 'दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की समस्या का कारण नटाल में गिरमिटिया मज़दूरों की आपूर्ति है।'[18] उनके अनुसार गिरमिटिया प्रथा का उन्मूलन कर देना चाहिए क्योंकि :

> दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया मज़दूरों की लगातार आवक के परिणामस्वरूप पूर्व गिरमिटियाओं की क्रमशः अनिवार्य सालाना बढ़ोतरी के कारण अनानुबंधित भारतीयों की सम्पूर्ण आबादी की हैसियत हीनतर हुई है। आम तौर पर जिस घृणा की भावना से गिरमिटिया मज़दूरों को देखा जाता है अब उसी घृणा से न सिर्फ़ पूर्व गिरमिटियाओं को बल्कि स्वतंत्र साधनों वाले सौदागरों और दूसरे भारतीयों को भी देखा जाता है।[19]

अतः गोखले के अनुसार गिरमिट प्रथा दक्षिण अफ्रीका में आज़ाद भारतीयों की हैसियत को प्रभावित कर रहा थी। दक्षिण अफ्रीकी राजनीतिक और नागरिक मामलों में सभी भारतीयों को एक ही नज़र से देख रहे थे। इससे ग़ैर-गिरमिटिया भारतीयों की उच्चतर हैसियत में गिरावट आ रही थी इसलिए इस प्रथा का उन्मूलन कर देना ही उचित था। गोखले ने दक्षिण अफ्रीका में अनानुबंधित व्यापारी भारतीयों की राजनीतिक अधिकारों के लिए ख़ासी चिंता दिखाई। उन्होंने स्वीकार किया कि दक्षिण अफ्रीका के ख़िलाफ़ प्रतिरोध करना उनका एक उद्देश्य था। उन्होंने कहा :

> मैं कौंसिल के सामने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का आग्रह करता हूँ क्योंकि मेरा मानना है कि यह उन बुराइओं को सुधारने में मदद करेगा जिनसे हम लोग पीड़ित हैं। लेकिन मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यदि इसका कोई प्रभाव न होता तो भी मैं यह प्रस्ताव रखता क्योंकि जिस तरह का व्यवहार दक्षिण अफ्रीकी उपनिवेश ने हमारे साथ किया है उसका आधिकारिक और ज़िम्मेदारीपूर्वक विरोध दर्ज करना आवश्यक है और ऐसा न करना समर्पण करना है।[20]

कौंसिल के सबसे महत्त्वपूर्ण मुसलमान राजनीतिज्ञ मोहम्मद अली जिन्ना और भी मुखर थे। उन्होंने कहा कि 'मुझे यहाँ यह साफ़-साफ़ कहने में कोई हिचक नहीं है कि इस प्रस्ताव का प्राथमिक लक्ष्य प्रतिरोध है और दूसरा व गौण लक्ष्य मज़दूरों का हित है।' सौदेबाज़ी की कोशिश में दादाभाई

---

[18] *प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट,* दिल्ली, फ़रवरी, 1910 : 239–285.
[19] वही : 240.
[20] वही.

नौरोजी ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए भारत सरकार को सलाह दी कि वह अनुबंधित भारतीयों के मामले के निष्पादन के लिए दक्षिण अफ़्रीकी सरकार पर दबाव डाले अन्यथा उनकी यह सम्पन्नता, जो कि गिरमिटिया मज़दूरों के कारण ही क़ायम थी, के लिए हानिकारक होगा। उन्होंने कहा :

> दक्षिण अफ़्रीकी उपनिवेशों में नटाल बड़ी संख्या में भारतीयों को अनुबंध के तहत रोज़गार देता है। भारत से पाँच से छह हज़ार मज़दूर प्रति वर्ष वहाँ प्रवासी बनकर जाते हैं। यह ताक़त सरकार के हाथ में है और इसका उपयोग दक्षिण अफ़्रीका के किसी भी क्षेत्र को लाभ पहुँचाने में किया जा सकता है।[21]

दादाभाई नौरोजी दक्षिण अफ़्रीकी संघ से गिरमिट प्रथा के उन्मूलन के पक्ष में नहीं थे, बल्कि उन्होंने भारत सरकार को सलाह दी कि वह अनुबंधित प्रवास को हथियार बनाकर स्वतंत्र भारतीय समुदाय की हितों की रक्षा के लिए दक्षिण अफ़्रीकी सरकार से समझौता करे। इस प्रकार 1910 में लाया गया गोखले का प्रस्ताव गिरमिट प्रथा की समाप्ति के लिए नहीं था। 1910 में दक्षिण अफ़्रीकी संघ के पूँजीपतियों ने भारत से गिरमिटिया मज़दूरों की माँग पर रोक लगा दी, परंतु ग़ैर-गिरमिटिया भारतीयों को राजनीतिक अधिकार प्रदान करना उचित नहीं समझा। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादियों का गिरमिट प्रथा के उन्मूलन का विचार दरअसल लक्ष्य प्रप्ति का एक बहाना था।

इसी बीच 1909 में भारत सरकार ने लार्ड सैंडर्सन के नेतृत्व में अनुबंधित प्रवास की समीक्षा के लिए एक कमेटी बनायी। अप्रैल, 1910 में सैंडर्सन कमेटी ने अपनी रपट सौंप दी। कमेटी ने गिरमिट प्रथा की अच्छाइयों और बुराइयों का उल्लेख करते हुए कुछ संशोधनों की सिफ़ारिश करते हुए गिरमिटिया प्रवास को जारी रखने का सुझाव दिया।[22] सरकार द्वारा सैंडर्सन रपट को प्रकाशित करने के बाद गोखले ने इस मुद्दे को पुन: उठाया। 1910 में नटाल के लिए भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की बहाली पर रोक लग जाने के बावजूद दक्षिण अफ़्रीका में ग़ैर अनुबंधित भारतीय राजनीतिक बराबरी का अधिकार नहीं पा सके थे। इसे सवर्ण और सम्भ्रांत भारतीयों ने एक चुनौती के रूप में लिया और ब्रिटिश सरकार को उसके साम्राज्य की प्रजा के ख़िलाफ़ भेदभाव का आरोप लगाया। गोपाल कृष्ण गोखले ने सैंडर्सन कमेटी के प्रमाणों का सहारा लेकर चार मार्च, 1912 को गिरमिट प्रथा के सम्पूर्ण उन्मूलन के लिए इम्पीरिअल लेजिस्लेटिव कौंसिल में एक प्रस्ताव रखा। इस बार गोखले ने गिरमिट प्रथा की बुराइयों को आधार बनाया। उदाहरण के लिए,उन्होंने अपराध दण्ड संहिता, आत्महत्याओं, बाग़ानों में हत्या की वारदातों तथा जहाज़ पर अनैतिकता को मुद्दा बनाया। उन्होंने गिरमिटिया स्त्रियों पर ध्यान केंद्रित किया और तर्क दिया कि स्त्रियों का कोटा पूरा करने के लिए चरित्रहीन महिलाओं को शामिल करने से बाग़ानों में अनैतिकता को बढ़ावा मिला और यह अनैतिक संबंध सिर्फ़ गिरमिटिया स्त्री-पुरुषों के ही बीच न होकर स्त्रियों और कुछ बाग़ान मालिकों या उनके ओवरसियरों के बीच भी था।[23] उनका तर्क था कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण के हिसाब से इस प्रथा से भारतीयों की चारित्रिक, सांस्कृतिक व सामाजिक अवनति हुई। इस प्रथा के कारण प्रवासी भारतीय 'कुली' के रूप में जाने गये भले ही वे ऊँची हैसियत वाले हों। दक्षिण अफ़्रीका की असहनीय कर प्रणाली ने पुरुषों को अपराध की ओर तथा स्त्रियों को निर्लज्जता की ओर प्रवृत किया। गोखले के अनुसार इस प्रथा से भारतीयों का आत्मसम्मान धूमिल हुआ।[24]

एच.एस. फ्रेमेंटल ने, जो कि उत्तर भारतीय मज़दूर श्रम बाज़ार के जानकार और लेजिस्लेटिव कौंसिल के सरकारी सदस्य थे, उन तर्कों की ज़बरदस्त मुख़ालफ़त की जिसके आधार पर गोखले ने

---

[21] दादाभाई नोरौजी, वही : 251.

[22] पार्लियामेंट्री पेपर्स (1910), (सीडी 5192), *रिपोर्ट ऑफ़ कमेटी ऑन एमिग्रेशन फ़्रॉम इण्डिया टू द क्राउन कॉलोनीज़ ऐंड प्रोटेक्टोरेट्स,* 1910 (आगे से रिपोर्ट ऑफ़ सैंडर्सन कमेटी).

[23] प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, नयी दिल्ली, 3 फ़रवरी 1910 : 251.

[24] वही : 370.

इस प्रथा का विरोध किया था।[25] उन्होंने गोखले के तर्कों का विरोध करते हुए कहा कि गोण्डा, फ़ैज़ाबाद, बस्ती, गोरखपुर तथा बनारस के लोग उपनिवेशों में काम करने की परिस्थितियों से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे।'वहाँ जाने वाला हर व्यक्ति काम करने की परिस्थितियों से परिचित था क्योंकि उसका जानकार या रिश्तेदार पहले से ही वहाँ रह रहा था।'[26] गोखले के दृष्टिकोण को ख़ारिज करने के लिए उसने विभिन्न उपनिवेशों में गिरमिटिया मज़दूरों द्वारा ख़रीदी गयी ज़मीन का विवरण प्रस्तुत किया :

> भारतीयों ने ब्रिटिश गुयाना में जो सम्पत्ति ख़रीदी वह उनके समुदाय के प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के हिस्से में लगभग दो पौंड के बराबर थी; त्रिनिदाद में 14 वर्षों में 70,000 एकड़ ज़मीन भारतीयों द्वारा ख़रीदी गयी; फ़ीज़ी में 1898 से 1908 के बीच लीज़ और फ्रीहोल्ड मिलाकर भारतीयों के ज़मीन का स्वामित्व 6,600 एकड़ से बढ़कर 46,000 एकड़ हो गया। यह 46,000 एकड़ फ़ीज़ी में रहने वाले आज़ाद भारतीयों के प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के हिस्से में 17 एकड़ के बराबर था।[27]

फ्रेमेंटल ने गिरमिटिया मज़दूरों के दो अंग्रेज़ी-शिक्षित बच्चों फ्रांसिस एडवर्ड मोहम्मद हुसेन तथा जॉर्ज फिट्ज़पैट्रिक का उल्लेख किया जिन्होंने सैंडर्सन कमेटी के सामने गवाही दी थी कि उपनिवेशों में कुलियों के साथ अच्छा व्यवहार होता था जिससे वे अंततः समृद्ध बन सके। फिट्ज़पैट्रिक ने सैंडर्सन कमेटी को भेजे अपने स्मरण पत्र में कहा था :

> ईस्ट इण्डिया के लोगों ने, अनुबंध समाप्त होने के बाद, स्वेच्छापूर्वक वहीं रहना स्वीकार किया; उन्होंने क्राउन की ज़मीन ख़रीदी और सफलता के नये द्वार खोले; उन्होंने गन्ने और फल-सब्ज़ियों की खेती की और सब्ज़ियों आदि के लिए उपनिवेश के लोग उन्हीं पर निर्भर रहते थे। वे कुशल मज़दूर बने और उनको स्थानीय सड़कों, रेल तथा नगरपालिकाओं में रोज़गार मिला। वे और उनके वंशज उद्यमी, व्यापारी, दूकानदार, ठेकेदार, शिक्षक आदि बने। वे सभी बेहद निष्ठावान और देशभक्त हैं और इसीलिए उपनिवेश के महत्त्वपूर्ण घटक बने।[28]

फ्रेमेंटल ने आगे तर्क दिया कि बहराइच के सेवक मज़दूरों की अपेक्षा प्रवासी मज़दूरों का वेतन और सेवा शर्तें कहीं बेहतर थीं।[29] भारतीय सिविल सेवा के अधिकारी फ्रेमेंटल ने राष्ट्रवादी-विमर्श को पलटने की कोशिश की। उसके अनुसार गोखले का प्रस्ताव ग़रीब भारतीय मज़दूरों को सफल उद्यमी बनने से रोकने का प्रयास था :

> पिछले सप्ताह ही *स्टेट्समैन* में मैंने पढ़ा कि गिरिडीह में कुछ छोटी जोत के मालिकों ने महज 20 से 40 रुपये की उधारी के बदले अपने को बँधुआ के रूप में गिरवी रख दिया। यह बँधुआगिरी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है क्योंकि पुत्र को पिता के क़र्ज़ का बोझ अपने ऊपर लेना पड़ता है। यह भारतीय साम्राज्य में रहने वाले ग़रीब मज़दूरों तथा उन पर निर्भर 46 मिलियन लोगों की हालत की एक झलक है और मुझे लगता है कि ऐसी विपरीत आर्थिक परिस्थितियों तथा जीवन भर बँधुआगिरी में रहने वाले लोग पाँच साल की गिरमिटियागिरी और उसके बाद आज़ादी के विकल्प का शायद

---

[25] 1905 में फ्रेमेंटल ने मज़दूरों की कमी की पड़ताल की थी और इसके लिए संयुक्त प्रांत और बंगाल के अनेक प्रवासी केंद्रों का दौरा किया था. देखें, एस.एच. फ्रेमेंटल (1906). आने वाले वर्षों में कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ के रजिस्ट्रार की हैसियत से भी उन्होंने संयुक्त प्रांत का दौरा किया और उपनिवेशों से वापस आने वाले कुलियों तथा पहली बार वहाँ काम करने जाने वाले कुलियों से बात की.

[26] फ्रेमेंटल, प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, नयी दिल्ली, 1912, वही : 373-4.

[27] फ्रेमेंटल, वही : 374.

[28] फ्रेमेंटल, वही : 374.

[29] गोंडा और बहराइच में सेवक मज़दूरों की प्रथा थी. 'सेवक मज़दूर कोरी, चमार, लुणिया जैसी निम्न जाति के सदस्य होते थे. वे हमेशा ज़मींदारों के कर्ज़ में डूबे रहते थे. यह उधार वास्तव में कभी चुकता नहीं होता था. उधार की मात्रा लेने वाले की ज़रूरत से तय होती थी लेकिन उधार सौ रुपये से अधिक और बीस रुपये से कम शायद ही होता था. बँधुआ को जोत का बहुत थोड़ा हिस्सा उसके मालिक द्वारा मिलता था और उस जोत की बाज़ार की क़ीमत जितना मूल्य उधार पैसे में जोड़ दिया जाता था'. *गोण्डा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर,* 1905, फ्रेमेंटल द्वारा उद्धृत, वही : 374.

> ही विरोध करेंगे और मेरे हिसाब से वे लोग भूस्वामी तथा साम्राज्य का आत्म गौरवशाली नागरिक बनाने वाली सीढ़ी काटने का प्रयास करने के लिए गोखले का धन्यवाद नहीं करेंगे।[30]

अत: गोखले की आलोचना से गिरमिटिया प्रवास की सरकारी नीति पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। समय के साथ इस प्रथा में उल्लेखनीय सुधार हुए थे और इस प्रथा के तहत गये प्रवासियों ने उपनिवेशों में आर्थिक रूप से समृद्ध एक नये वर्ग का निर्माण किया जो गिरमिटिया प्रथा को समाप्त करने के बजाय अपनी सामाजिक हैसियत को उठाने में अधिक रुचि रखता था। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका के दो प्रमुख संगठनों द नटाल इण्डियन पैट्रियॉटिक यूनियन (एनआईपीयू, स्थापना : 1908) तथा द कॉलोनियल बोर्न इण्डियन एसोसिएशन (सीबीआईए, स्थापना :1911) के सदस्य पूर्व गिरमिटिया मज़दूर या उनके बच्चे थे जो अब नये उभरते संभ्रांत तबक़े के प्रतिनिधि थे। परिणामस्वरूप उनकी मुख्य चिंता गिरमिट प्रथा के उन्मूलन के बजाय अपनी सामाजिक हैसियत बढ़ाने की थी।[31] गिरमिटिया मज़दूरों के बीच इस प्रथा का मुखर विरोध न होने के कारण ही बीसवीं सदी के पहले दशक तक सरकार ने इस प्रथा के उन्मूलन की राष्ट्रवादियों की माँग पर ध्यान नहीं दिया।

इम्पीरिअल लेजिस्लेटिव कौंसिल में 1912 के गोखले के गिरमिट उन्मूलन प्रस्ताव का 22 सदस्यों ने समर्थन तथा 33 सदस्यों ने विरोध किया। इस तरह प्रस्ताव ख़ारिज हो गया। गिरमिट विरोधी प्रस्ताव पर हार जाने से राष्ट्रवादियों को बहुत हताशा हुई। गोखले ने वादा किया कि वे तब तक ऐसा प्रस्ताव लाते रहेंगे जब तक वह पास न हो जाए। इस बीच राष्ट्रवादियों ने साम्राज्य में भारतीयों के प्रति होने वाले बरताव तथा गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन के मुद्दे पर अपने विरोध को केंद्रित रखा और पहले विश्व-युद्ध की शुरुआत के साथ ही गिरमिट प्रथा के विरोध ने एक जनांदोलन का रूप ले लिया।

गिरमिटिया स्त्रियाँ और राष्ट्रवादी ध्रुवीकरण

1913 में 'फ़ीज़ी से एक भारतीय स्त्री की पुकार' शीर्षक से *भारत मित्र* में प्रकाशित हुए एक कॉलम ने भारतीय राष्ट्रवादियों और गिरमिट प्रथा के ख़िलाफ़ अभियान चलाने वाले लोगों को ब्रिटिश सत्ता और उसकी नीतियों की आलोचना करने का एक अच्छा अवसर उपलब्ध करा दिया। इस कॉलम का आधार कुंती नाम की गिरमिटिया स्त्री थी जो लखुआपोखर, पोस्ट बेलघाट, ज़िला गोरखपुर के चरण चमार की बेटी थी। कुंती ने अपने पत्र में यह आरोप लगाया था कि 10 अप्रैल, 1913 को श्वेत ओवरसीयर और सरदार ने उसके साथ बलात्कार करने का भरपूर प्रयास किया। अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए कुंती मुश्किल से भाग कर पास की ही एक नदी में कूद गयी, किंतु पास ही में अपनी नाव पर सवार एक लड़के ने कुंती की जान बचा ली। अनेक अंग्रेज़ी और क्षेत्रीय भाषा के अख़बारों ने इस पत्र को पुनर्प्रकाशित किया।[32] भारतीय राष्ट्रवादी इस मुद्दे को आम जनता के बीच ले गये और बाग़ानों में भारत की बेटी के साथ हुए अत्याचार का मुद्दा उठाने लगे। चमार जाति से होने के बावजूद अनेक राष्ट्रवादियों ने कुंती की प्रशंसा की और आशा व्यक्त की कि इज़्ज़त पर आँच आने पर सभी भारतीय स्त्रियाँ कुंती का ही अनुकरण करेंगी। *भारत मित्र* ने 8 मई, 1914 को लिखा :

> चमार जाति से होने के बावजूद, अपनी अस्मत बचाने के लिए नदी में कूदने का साहस दिखाकर उसने अनेक सम्भ्रांत स्त्रियों को पीछे छोड़ दिया है। इससे साहसी और आदरणीय स्त्रियों की पाँति

---

[30] फ्रेमेंटल, वही : 374.

[31] सुरेंद्र भाना, वही : 116.

[32] *कॉलोनियल सेक्रेटरी ऑफ़िस मिनट्स पेपर्स* (आगे से सीएसओएमपी), 8779 /13; 6609 /14, नैशनल आर्काइव्ज़ ऑफ़ फ़ीज़ी (अब एनएएफ़). फ़ीज़ी की सरकार ने इस पर जाँच बैठाई और पता चला कि कुंती के लिए यह पत्र स्वामी मनोहरानंद सरस्वती द्वारा तोताराम सनाढ्य के घर पर लिखा गया था. बृजलाल ने इसका विस्तार से ज़िक्र किया है. देखें बृजलाल (1985) : 55-71. यह भी देखें, जॉन. डी. केली (2005).

> में उसका स्थान बन गया है। उसने जिस तरह से प्रवासी अधिकारी से बरताव किया उससे हमारे देश की स्त्रियों को सीखना चाहिए। बहुत नाजुक मौक़ों पर भी सही (अस्मत?) का ही साथ देना चाहिए। एक समय था जब हमारे देश में कुंती जैसी अनेक स्त्रियाँ थीं लेकिन दुर्भाग्य से अब वैसी स्थिति नहीं है।[33]

इस अवसर पर एक कवि ने एक कविता लिखी : [34]

सतियों का धर्म डिगाने को जब अन्यायीयों ने कमर कसी
जल अगम में कुंती क़ूद पड़ी, पर बही मँझधार नहीं
अत्याचार की चक्की में, पिस कर धर्म नहीं छोड़ा
हिंदूपन अपना खो बैठें, भारत के वीर गँवार नहीं
इस पतन का तो कुछ यत्न करो, हर कुंती का जीवन सफल रहे
बिना धर्म धारण किये, सुख शांति का संचार नहीं

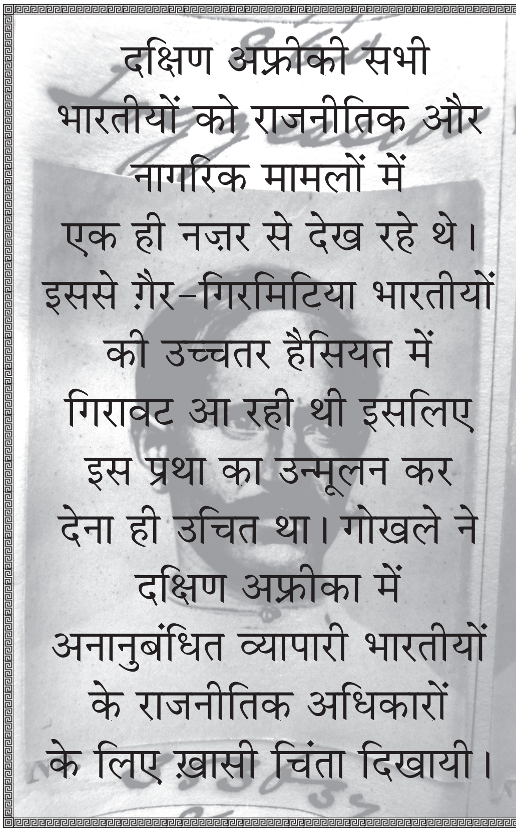
कुंती प्रकरण ने औपनिवेशिक शासन की आलोचना का एक पुख़्ता आधार दे दिया। इस तरह एक मज़बूत उपनिवेश विरोधी विमर्श तैयार हुआ जिसके तहत भारतीय संस्कृति में उपनिवेशवादी हस्तक्षेप की घोर आलोचना की गयी और भारतीय स्त्री को जान की क़ीमत पर भी पतिपरायण माना गया।[35] प्रसिद्ध मानवविज्ञानी जॉन केली का मानना है कि कुंती प्रसंग द्वारा भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारतीय स्त्री की धार्मिक छवि को यथार्थ बना दिया कि विपत्ति में ईश्वर उसकी रक्षा करता है।[36] जिस तरह भक्ति विमर्श में सतीत्व या अस्मिता ही स्त्री का सत्व है और पत्नी की पवित्रता का अस्तित्व ईश्वर/पति के साथ उसके धार्मिक बंधन में है।[37] अत: केली के अनुसार भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा भारतीय स्त्रीत्व की धार्मिक धारणा को औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध कर दिया गया, क्योंकि औपनिवेशिक शासन में भारतीय स्त्री का सतीत्व ख़तरे में था।[38] जब तोताराम सनाढ्य ने बनारसीदास चतुर्वेदी की सहायता से 1914 में अपनी आत्मकथा में कुंती प्रकरण की विस्तार से चर्चा की तब तोताराम ने मुख्यत: कुंती की अस्मत की बात की जिसे वह तमाम कठिनाइयों के बीच बचाने में सफल रही थी। भारतीय राष्ट्रवादियों ने कुंती के साहस की प्रशंसा की। लेकिन भारतीय राष्ट्रवादियों के नज़रिये में जातिवादी और उच्चवर्णीय बात यह थी कि वे कुंती को एक निष्ठावान पत्नी के रूप न देख कर इस रूप में देख रहे थे कि चमार महिला होकर भी उसने अपना बलात्कार नहीं होने दिया। उनके लिए यह एक आदर्श भारतीय स्त्रीत्व का उदाहरण था और इससे कुंती उच्च जाति की निष्ठावान पत्नियों की स्पर्धा में आ गयी थी। दूसरे शब्दों में, भारतीय राष्ट्रवादियों ने पीड़िता के चयन और व्याख्या में भी उच्च जाति के मूल्यों को प्राथमिकता दी। नीची जाति की स्त्री तब तक राष्ट्रवादियों के विमर्श का विषय नहीं बन सकी जब तक उसने ऊँची जाति की स्त्री के तथाकथित गुणों का प्रदर्शन नहीं कर दिया।

भारतीय स्त्री पर हुए इतिहास लेखन को भारतीय समाज और इसकी स्त्रियों के बारे में राष्ट्रवादियों द्वारा उपनिवेशवादियों को दिये जवाब के संदर्भ में ही समझा गया है।[39] यद्यपि विद्वानों ने राष्ट्रवादी विचार निर्मिति में पुंसत्व और पितृसत्ता को तो पहचाना है लेकिन वे भारत में स्त्रियों के जातिगत

---

[33] सीएसओएमपी, 6609 /14.
[34] देखें, धीरा वर्मा (2000) : 212.
[35] जॉन डी. केली (2005), वही : 45 –65.
[36] वही : 48.
[37] वही : 63.
[38] केली, वही, अध्याय 2.
[39] पार्थ चटर्जी (1993); कुमकुम संगारी और सुदेश वैद (1989); सुजाता पटेल (1988); सुरुचि थॉपर (1993); शकुंतला राव (1999); मोंडल (2002) : 913–936.

वैविध्य को समझने में असफल रहे।[40] इतिहासकारों तथा स्त्री विमर्शकारों ने भारतीय संदर्भ में स्त्री का समरूपीकरण कर दिया है और स्त्री की कोटि के भीतर अधीनता की विविध कोटियों की उपेक्षा की है। इसीलिए स्त्रियों के संदर्भ में राष्ट्रवादी विमर्श उनकी आलोचना पितृसत्ता तथा पुंसत्व तक सीमित है और उसमें जाति का पैमाना शामिल नहीं है। कुंती प्रसंग इसका शानदार उदाहरण है कि कैसे भारतीय समाज के जाति के पूर्वग्रह के कारण वर्णक्रम में नीचे आने वाली जाति की महिला की आवाज़ को इतिहास की व्याख्या में सिर्फ़ स्त्री की कोटि में रखकर धुँधला कर दिया।



जोगेसर, कुली नं. 353657, मॉरिशस
सौजन्य से : महात्मा गाँधी इंस्टीट्यूट, मोका, मॉरिशस

जब भारतीय राष्ट्रवादी उपनिवेशों में स्त्रियों पर अत्याचार के मुद्दों का राजनीतीकरण कर रहे थे और गिरमिट प्रथा की समाप्ति की माँग कर रहे थे उसी समय कुंती अपने पति और दो बेटियों के साथ जुलाई, 1914 में फ़ीज़ी से कलकत्ता लौटी।[41] कुंती की कहानी पहले से ही लोगों की जानकारी में थी और अख़बारों के सम्पादकीय और कवियों की कविता का विषय बन चुकी थी।[42] भारत के प्रवासी अधिकारी कुंती के कलकत्ता लौटने की सूचना व उसके गिरमिट विरोधी अभियान का हिस्सा बनने से डरे हुए थे। आने के बाद कुंती ने संबंधित अधिकारियों के सामने फ़ीज़ी के बग़ान में अपने साथ हुए अन्याय की कहानी के साथ ही वापस लौटते समय हुए आर्थिक और मानसिक कठिनाइयों के बारे में बताया। कुंती अपने पति की बीमारी के कारण कलकत्ता से अपने गाँव नहीं लौट पाई। कलकत्ता में वह गिरमिटया प्रवास विरोधी राम बिहारी टण्डन के सम्पर्क में आयी। वह 160, हैरिसन रोड पर रुकी जो कि इण्डेंचर कुली प्रोटेक्शन सोसाइटी या एंटी इण्डेंचर्ड एमिग्रेशन लीग का मुख्य कार्यालय था।[43] उसने कलकत्ता में गिरमिट विरोधी अभियान में हिस्सा लिया और लोगों के बीच भाषण भी दिया।

तोताराम सनाढ्य भी फ़ीज़ी में 21 वर्ष बिताकर अप्रैल,1914 में भारत लौटने वाले एक अन्य गिरमिटिया थे। तोताराम गिरमिटिया प्रवास विरोधी आंदोलनकारी जैसे मणीलाल, गोपाल कृष्ण गोखले,

---

[40] उदाहरणार्थ, जब इतिहासकारों ने राष्ट्रवादियों द्वारा भारतीय समाज और स्त्री के संदर्भ में उपनिवेशवादियों के ख़िलाफ़ गढ़ी नयी स्त्री की छवि की व्याख्या की तो वे ऊँची जातियों द्वारा नीची जाति की महिलाओं की शिक्षा के विरोध को समझने में विफल रहे. इसका सबसे अच्छा उदाहरण सावित्रीबाई फुले का अनुभव है.

[41] देखें, आशुतोष कुमार (2017).

[42] राष्ट्रवादियों द्वारा रचित कविताओं सम्पादकों के तथा अख़बारों में छपी सामग्रियों के लिए देखें, आशुतोष कुमार (2013) : 12 –13.

[43] सीएसओएमपी, 8865 /15, एनएएफ़, कुंती ने अपना हलफ़िया बयान अमूल्य चंद्र दत्त, प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, कलकत्ता के सामने चौदह अगस्त, 1915 को दिया था. इण्डेंचर्ड कुली प्रोटेक्शन सोसाइटी और एंटी-इण्डेंचर्ड एमिग्रेशन लीग का गठन धनी मारवाड़ियों और आर्यसमाजियों द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था ताकि विदेशों में प्रवसन रोका जा सके. इन संगठनों का दफ़्तर 160, हैरिसन रोड/सुत्ता पति रोड, कलकत्ता पर था. मैंने इन संगठनों की गतिविधियों की चर्चा इस लेख के बाद वाले हिस्से में की है. देखें, पत्र संख्या 322, दार्जिलिंग, 14 अक्टूबर, 1915, ज़ेम्स डोनाल्ड, सेक्रेटरी, जीओबी फ़ाइनेंशियल डिपार्टमेंट से सेक्रेटरी, जीओआई, सी ऐंड आई को.

महात्मा गाँधी, सी.एफ़. एंड्रूज़ आदि के सम्पर्क में पहले से ही थे। वापस लौटने के बाद वे एक महीने तक कलकत्ता के धर्मतल्ला में रुके रहे। उन्होंने तेरह भाषण दिये और इण्डेंचर्ड प्रोटेक्शन सोसाइटी के मारवाड़ियों की सहायता से कुल 15,000 पर्चे बाँटे।[44] तोताराम गिरमिट प्रथा की हक़ीक़त बताने का दावा करते हुए गाँव-गाँव घूमते रहे। उन्होंने कलकत्ता, लाहौर, अम्बाला, मथुरा आदि जगहों पर कुली प्रथा के ख़िलाफ़ भाषण दिये। वे मद्रास में कांग्रेस के उन्तीसवें अधिवेशन में फ़ीज़ी के भारतीयों के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए और आधे घंटे तक भाषण दिया। हरिद्वार के कुम्भ मेला में भी तोताराम ने कुली प्रथा के ख़िलाफ़ भाषण दिया और आरकाटियों (भर्ती करने वालों) के ख़िलाफ़ 50,000 पर्चे बाँटे।

गिरमिट प्रथा के अपमान को बेपर्दा करने के लिए और उसके ख़िलाफ़ भारतीयों को गोलबंद करने के लिए बनारसीदास के सहयोग से तोताराम ने अपने अनुभवों को 1914 में आत्मकथा के रूप में *फ़ीज़ी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष* शीर्षक से प्रकाशित कराया। कुली प्रथा के ख़िलाफ़ राष्ट्रवादी गोलबंदी में इस किताब ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। एक सरकारी पाठक ने लिखा, 'उन्होंने फ़ीज़ी में भारतीयों पर होने वाली वीभत्स यातना का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया और उनके साथ होने वाले हिंसा के अनेक तरीक़ों के बारे में बताया।'[45] अपनी किताब में इस प्रथा की अनेक बुराइयों का ज़िक्र करने के साथ उन्होंने बाग़ानों में महिला मज़दूरों की स्थिति का विशेष वर्णन किया।

तोताराम के अनुसार गिरमिट प्रथा ने स्त्रियों के प्रवसन से फ़ीज़ी में भारत की छवि ख़राब हुई। फ़ीज़ी के एक मूल निवासी ने बाग़ानों में स्त्रियों की स्थिति के बारे में तोताराम से निम्न बातें कहीं :

> भारत एक ख़राब देश है, वहाँ की स्त्रियाँ विदेश (फ़ीज़ी) में मज़दूरी करने आती है। यहाँ आकर वे अनेक यातनाएँ सहती हैं। जैसी यातनाएँ तुम्हारी स्त्रियों को दी जाती हैं वैसी अगर हमारी महिलाओं को दी जाती तो हम लोग इसके ज़िम्मेदार लोगों का समूल नाश कर देते।[46]

यद्यपि तोताराम बाग़ान में स्त्रियों के काम की सराहना करते हैं, उनकी कठिनाइयों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, तो भी उनके विचार में अंतर्निहित है कि स्त्रियाँ स्वभावत: कठिन काम के लिए नहीं बनी हैं : वे स्वभावत: कोमल और सुकुमार होती हैं और घर में कठिन काम नहीं किये होतीं।' इस प्रकार तोताराम ने स्त्रियों के संसार को घर तक सीमित कर दिया। वे कामकाजी दुनिया से नहीं आतीं— ऐसा कहकर उन्होंने घर अर्थात् भारत में आर्थिक कार्यक्षेत्र में स्त्रियों की समान भूमिका की अनदेखी कर दी।[47] बाग़ान में काम करने वाली स्त्रियों के प्रति उसकी सहानुभूति का विरोधाभास यह है कि इस तर्क को भारत में खेत में काम करने वाली स्त्रियों पर लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके विचार में जाति और वर्ग से परे घरेलूपन सभी महिलाओं का वाचक है। बाग़ान में काम करने वाली स्त्रियों के शोषण के ख़िलाफ़ जो तर्क तोताराम तथा राष्ट्रवादियों ने प्रस्तुत किये वह समस्याग्रस्त बना रहा। अत: इसमें आश्चर्य नहीं है कि स्त्रियों को दोहरे शोषण से बचाने की लड़ाई विदेशी बाग़ानों के संदर्भ में तो लड़ी गयी, किंतु विडम्बनापूर्ण ढंग से भारत में हो रहे ऐसे ही शोषण की उपेक्षा कर दी गयी। इतिहास में इस बिंदु पर भारतीय राष्ट्रवादियों ने घर और बाहर महिलाओं के आर्थिक योगदान की अनदेखी की और राष्ट्रवादी विमर्श में स्त्रियाँ सिर्फ़ संस्कृति की वाहक के रूप में दिखाई गयीं। इसलिए बाग़ानों में महिलाओं के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को तत्काल ही उदीयमान राष्ट्र के अभिमान पर प्रहार में बदल दिया जाता था।

---

[44] तोताराम सनाढ्य (1914).

[45] नोट 1151, सीआईडी, यूपी, 20 अप्रैल, 1915, देखें, यूपी गवर्नमेंट टू मद्रास गवर्नमेंट, मद्रास, पब्लिक ऑर्डिनरी सीरीज, जीओएन 1331, 13 सितम्बर, 1915, एनएआई.

[46] तोताराम सनाढ्य, चौथा संस्करण, वही : 32.

[47] भारत में स्त्रियों की आर्थिक भूमिका का विश्लेषण कई विद्वानों ने किया है. कुछ उदाहरणों के लिए देखें, स्मित सेन (1999); प्रेम चौधरी (1987); मुकुल मुखर्जी (1983) : 27-45.

तोताराम की आत्मकथा से प्रेरित होकर अनेक राष्ट्रवादियों ने इस प्रथा के ख़िलाफ़ लिखा। लक्ष्मण सिंह चौहान ने एक नाटक लिखा *कुली-प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी* और इसे संयुक्त प्रांत के लोकप्रिय अख़बार *प्रताप* में प्रकाशित कराया।[48] नाटक ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों की आलोचना की और अपने पाठकों में देशभक्ति की भावना जगाया। हालाँकि भारत सरकार ने 1910 के प्रेस एक्ट के तहत इस पर प्रतिबंध लगा दिया ।[49] *कुली-प्रथा* नाटक ने गिरमिट प्रथा की निंदा की और इसकी तुलना दास-प्रथा से की। इसके अग्रपृष्ठ की पंक्तियाँ एक कविता से शुरू होती हैं :

है गुलाम व्यापार यह कुली प्रथा के वेश में
जो अब तक देखा न था देखा भारत देश में

आभार वाले भाग में लेखक यह आशा करता है कि यह आदरणीय राजाओं और राजबहादुरों के हाथ न लगे, जो भुगतान करके वोट लेते हैं और अपने देश की जनता को निराश करते हैं।

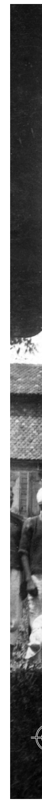
जो कि किराये के वोटों पर चढ़ कौंसिल को जाते हैं
बनकर मेंबर गवर्नमेंट से ऑनेरबल कहलाते हैं
देशवासियों की आशा को कुचल चूर करने वाली
संशय संयुक्त माननीयता धन बल से जिनने पा ली
उन सब राजा रायबहादुर इत्यादि श्री कर में
कभी न पहुँचे ये पुस्तक हे ईश! माँगता हू वर में

नाटक तीन अंक तथा चौबीस दृश्यों में बटा था। पहले दृश्य में पुरी के जगन्नाथ मंदिर में भगवान के सामने प्रार्थना करते हुए तीर्थयात्री उनसे पुराने शारीरिक और मानसिक शक्ति, यश तथा वैभव को लौटाने की माँग करते हैं। बृजलाल अरकाटी के रूप में आता है जो अनेक तरीक़ों और चालाकियों से ग्रामीणों को प्रवास के लिए प्रेरित करता है। कुंती, जो असल में फ़ीज़ी में गिरमिटिया मज़दूर थी और उसका पति भोला दो ऐसे पात्र हैं जो अरकाटी के प्रभाव में आकर फ़ीज़ी चले जाते हैं। बाद में दिखाया गया है कि दोनों के साथ छल होता है। कुंती को अपने पति से अलग कर दिया जाता है और मेडिकल जाँच के समय उसे बहुत शर्मिंदगी झेलनी पड़ती है। इस प्रसंग में कुंती गाती है :

कैसे धरूँगी धैर्य नाथ हो! तुम बिन मैं अबला नारी,
मेरे लोचन तुम बिन अंधे शून्य मुझे वसुधा सारी,
जीवन की यात्रा भारी है पथ भावी में छिपा हुआ,
विपदा की नदियाँ बहती हैं विपिन भयानक संसारी,
इसीलिए हे नाथ मुझे तुम तजो नहीं हा! दया करो,
मुझे बचाना नाथ सतावेंगे जब दुष्ट अत्याचारी।[50]

बाग़ान में ओवरसियर भोला की पीट-पीट कर हत्या कर देता है। नाटक में यह भी दिखाया गया है कि बाग़ान में कुंती बहुत कठिनाई सहती है। कुंती के पति को मारने के बाद जब श्वेत इंस्पेक्टर कुंती के पास उसका दैहिक शोषण करने आता है, कुंती निम्न पंक्तियों में फट पड़ती है :

फोड़ दूँगी अँगुलियों से मैं तेरी आँखें जभी
खींच लूँगी तेरे इस पेट की आँतें सभी
रगड़ दूँगी एड़ियों से नीच तेरा हृदय भी



---

[48] लक्ष्मण सिंह (1916), *कुलीप्रथा अर्थात् बीसवीं शताब्दी की गुलामी,* प्रकाशक स्वामी नारायण मिश्र, प्रताप कार्यालय, कानपुर. तोताराम सनाढ्य अपनी रचना के दूसरे संस्करण की भूमिका में लिखते हैं कि सरकार ने उनकी किताब प्रतिबंधित कर दी. लक्ष्मण सिंह को कुलीप्रथा नाटक लिखने में उन्होंने भी मदद की थी. यह भी भारत सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गयी थी. करेन ए. रॉय ने अपने पीएचडी के शोधप्रबंध में ग़लत लिखा है कि तोताराम सनाढ्य जनवरी, 1915 के आसपास भारत लौटे, देखें : 214 और उन अपनी किताब *कुली-प्रथा* : 220.

[49] प्रोस्क्रिप्शन ऑफ़ कुली-प्रथा अण्डर 1910 प्रेस एक्ट, नोट बाई सेटॉन, 27 मार्च 1917, जे ऐंड पी 1109/17, आईओआर.

[50] वही : 34.

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सूरीनाम की राजधानी परामारीबो के डिपो में भारतीय गिरमिटिया मज़दूर। सौजन्य से : जूलियस एडवर्ड मुलर, रॉयल ट्रॉपिकल इंस्टीट्यूट, नीदरलैण्ड



बस दुखमय इस जगत में शांति पाऊँगी तभी।[51]

एक दृश्य में कुछ युवक अख़बार में विदेश में भर्तियों के बारे में पढ़ते हैं जहाँ विदेश में भारतीयों की स्थिति का चित्रण करने वाली एक कविता मिलती है :

आर्य बहू, तब शांति या रमणीयता वह है कहाँ ?
क्यों म्लान है तेरा बदन यह दीनता कैसी यहाँ ?
माँ बालकों के पैर में है दासता बड़ी पड़ी
हाथ में उनके जड़ी निःशस्त्रता की हथकड़ी
परदेश के सब द्वार उनके हेतु बिल्कुल बंद हैं
जा सकेंगे तो कुली बन,भाग्य उनके मंद हैं।[52]

नाटक में यह भी कहा गया है कि सरकार द्वारा कराई गयी जाँच में उपनिवेशों में भारतीय कामगारों की स्थिति के बारे में ग़लत जानकारी दी गयी थी। अंत में, नाटक का निष्कर्ष है कि फ़ीज़ी में भारतीयों की हालात शोचनीय है और वाइसराय की कौंसिल के प्रस्ताव इसका समाधान नहीं है, बल्कि बड़े पैमाने पर जनता की गोलबंदी और विरोध ही उपनिवेशों में कुली भाइयों को बचाने का एक मात्र ज़रिया है। गिरमिट प्रथा पर लिखे साहित्य को भारतीय क्रांतिकारियों के बीच भी पाया गया। बाल गंगाधर तिलक ने अपने मराठी पत्र *केसरी* में ऐसे पर्चों पर दो लेख प्रकाशित किये। ऐसा साहित्य मैनपुरी केस के षड्यंत्रकारियों के पास भी मिला था।[53]

---

[51] वही : 59.

[52] वही : 18.

[53] तोताराम सनाढ्य, वही : 19.

गिरमिट प्रथा के विरुद्ध भड़कती भावनाओं और दबाव के परिप्रेक्ष्य में लीग फॉर अबॉलिशन ऑफ़ इण्डेंचर लेबर के मानद विशेष सचिव के रूप में गाँधी के ख़ास दोस्त सी.एफ़. ऐंड्रूज़ और विलियम विंस्टेनले पिअरसन गिरमिटिया मज़दूरों की पीड़ा और प्रथा की बुराइयों की जाँच-परख के लिए फ़ीज़ी गये।[54] यहाँ तक कि भारत सरकार भी फ़ीज़ी में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के साथ होने वाले बरताव पर चिंतित थी, क्योंकि तोताराम सनाढ्य जैसे वापस लौटे गिरमिटिया मज़दूरों के साथ साथ ईसाई मिशनरी जे.डब्ल्यू. बार्टन और हन्नाह डुडले ने भी वहाँ का नकारात्मक चित्र प्रस्तुत किया था। ऐंड्रूज़ और पिअरसन ने फ़रवरी, 1916 में अपने स्वतंत्र जाँच की रपट प्रकाशित करायी।[55] ऐंड्रूज़ ने अरकाटियों द्वारा औरतों और मर्दों को धोखे से डिपो लाने की अनेक घटनाओं की चर्चा की। ऐसे उद्देश्य (विशेषत: स्त्रियों की भर्ती के लिए) के लिए अरकाटियों ने मथुरा, इलाहाबाद, बनारस आदि तीर्थ स्थानों का चयन किया था।[56] यह बहुत स्वाभाविक था, क्योंकि वे सब विधवाएँ थीं। उन लोगों ने अपनी रपट में बताया कि इस प्रथा के कारण भारतीयों के बीच हत्या और अपराध की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई थी। उनके अनुसार ऐसे अपराध का कारण स्त्री-पुरुष के अनुपात में अंतर था :

> ऐसे अपराधों में दोषी पाए गये अधिकतर लोग अन्यथा शांत और क़ानून का पालन करते थे; और जिन हत्याओं के लिए उन्हें मौत की सज़ा दी गयी थी उसका कारण हत्या की इच्छा न होकर यौनजनित ईर्ष्या थी। इसी तरह औपनिवेशिक सरकार का निष्कर्ष भी यही था की बाग़ानों में हत्या की घटनाओं का कारण वासनात्मक ईर्ष्या थी।[57]

इस समस्या के निदान के लिए सरकार ने नियम बना दिया कि ईंख के बाग़ानों में भर्ती के लिए स्त्री-पुरुष का अनुपात 40:100 का होना चाहिए। फ़ीज़ी के भारतीयों द्वारा दायर एक आवेदन, जिसे ऐंड्रूज़ और पिअरसन के सामने भी प्रस्तुत किया गया, का भी यही कहना था कि वहाँ हत्या की घटनाओं का कारण लैंगिक अनुपात में विषमता थी।

बाग़ानों में हिंसा के कारणों का विश्लेषण करते हुए इतिहासकार बृजलाल ने सही कहा है कि स्त्रियों की हत्या का कारण सिर्फ़ वासनात्मक ईर्ष्या नहीं थी, बल्कि यह सामान्य सामाजिक बंधनों में टूट का नतीजा था। उनके शब्दों में 'वासनात्मक ईर्ष्या गिरमिटिया को आक्रांत करने वाली समस्या का कारण न होकर लक्षण था। ... परिवार, शादी, जाति, सगोत्रता तथा धर्म जैसी सामाजिक संस्थाओं में विचलन ही फ़ीज़ी की भारतीय आबादी के कष्ट और आत्महत्या का अंदरूनी कारण था।'[58] एक रुचिकर आलेख में इतिहासकार प्रभु महापात्र ने माना है कि बाग़ानों में स्त्रियों की हत्या का कारण मज़दूर-व्यवस्था की भेदभाव की नीति थी जिसने उनको गँड़ासे जैसे भारी हथियारों से वंचित कर दिया था। उनके अनुसार, 'बाग़ानों में श्रम विभाजन ने स्त्रियों को निराई-गुड़ाई जैसे प्राथमिक कार्यों में लगाया, जबकि भारी काम, जिसमें कटार, फावड़ा, तथा बेलचा आदि की ज़रूरत होती है, में मर्दों को लगाया। अत: किसी पुरुष द्वारा हमले के समय स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ हो गयीं।'[59]

इन विद्वानों से भारतीय मर्द की पितृसत्तात्मक मानसिकता अनदेखी रह गयी है जो की बाग़ानों में अनेक हत्याओं के पीछे मौजूद थी। उपनिवेशों में पारम्परिक पितृसत्तात्मक बंधन से स्त्रियों की आज़ादी

---

[54] चार्ल्स फ्रियर ऐंड्रूज़ (1871-1940) इंग्लैण्ड में पैदा हुए थे। 1896 में पादरी बने, ख़राब सेहत के कारण 1899 में यह पेशा छोड़ कर 1904 में सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज, दिल्ली में शिक्षक बन कर भारत आ गये. गोखले की सलाह पर दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा के दौरान गाँधी के घनिष्ठ मित्र बन गये. तदनंतर भारतीय आज़ादी के आंदोलन के साथ सक्रिय हुए. विलियम विंस्टेनले पिअरसन (1881-1923) एक ईसाई मिशनरी और भारतीयों के समर्थक थे. उस समय वे शांतिनिकेतन में शिक्षक थे.

[55] सी.एफ.ऐंड्रूज़ और डब्ल्यू.डब्ल्यू. पिअरसन (1916).

[56] वही : 12.

[57] वही : 19.

[58] बृज वी लाल, *चलो जहाज़ी,* वही : 218

[59] पी.पी. महापात्र (1995) : 227 -260.



त्रिनिडाड के पोस्टकार्ड पर छपी भारत की दो गिरमिटियाँ स्त्रियाँ

बाग़ानों में एक आज़ाद दुनिया थी जो उन पितृसत्तात्मक बंधनों से मुक्त थी जो भारत में लैंगिक संबंधों को आकार देती थी। बाग़ानों में तुलनात्मक रूप से लैंगिक बराबरी मिली हुई थी जिसके तहत स्त्रियों को अपना साथी चुनने की आज़ादी थी। जब कभी भी किसी स्त्री को अपने पति या प्रेमी से समस्या होती, वो तलाक़ लेने या अलग होने को आज़ाद थी जो कि भारत में आसान नहीं था। बाग़ानों की व्यवस्था ने अंतर-जातीय और अंतर-धार्मिक विवाह के प्रतिबंध को भी तोड़ दिया था। बाग़ानों में अक्सर जोड़ों की आपसी रज़ामंदी ही विवाह का आधार थी। भारतीय राष्ट्रवादी ऐसी बातों से बहुत विचलित थे।

से बहुत सारे पुरुष मज़दूर हताशा और तनाव में थे। बाग़ानों में एक आज़ाद दुनिया थी जो उन पितृसत्तात्मक बंधनों से मुक्त थी जो भारत में लैंगिक संबंधों को आकार देती थी। बाग़ानों में तुलनात्मक रूप से लैंगिक बराबरी मिली हुई थी जिसके तहत स्त्रियों को अपना साथी चुनने की आज़ादी थी। जब कभी भी किसी स्त्री को अपने पति या प्रेमी से समस्या होती, वो तलाक़ लेने या अलग होने को आज़ाद थी जो कि भारत में आसान नहीं था। बाग़ानों की व्यवस्था ने अंतर-जातीय और अंतर-धार्मिक विवाह के प्रतिबंध को भी तोड़ दिया था। बाग़ानों में अक्सर जोड़ों की आपसी रज़ामंदी ही विवाह का आधार थी। भारतीय राष्ट्रवादी ऐसी बातों से बहुत विचलित थे। ऐंड्रूज़ ने लिखा :

> तलाक़ भी उतने ही आम थे। स्त्रियाँ गहनों के लिए अपने पतियों को छोड़कर दूसरे पुरुषों के साथ रहने लगती थीं। जैसे वे चाहती थीं वैसे रहती थीं और जो चाहती थीं वह करती थीं। जाति और धर्म एक अराजकता में मिश्रित हो गये थे। हिंदू युवतियाँ विवाह के लिए मुसलमानों को बेच दी जाती थीं और इसका विलोम भी सच था। मेहतर के बच्चों की शादी कभी कभी ब्राह्मण से हो जाती थी ... प्रवसन विभाग की शादियों को भारतीय *मारिट* आवश्यक था, इसके अलावा और कुछ भी क़ानूनी नहीं था।[60]

ऐंड्रूज़ के रपट ने 'ऑनर किलिंग' की अनेक घटनाओं को उजागर किया जिसमें अपना धर्म निभाने और पारिवारिक प्रतिष्ठा बचाने के लिए मर्दों द्वारा अपना साथी स्वयं चुनने के कारण स्त्रियों की हत्या कर दी गयी थी। ऐंड्रूज़ और पिअरसन के लिए नैतिक पतन सबसे दुखद था। उन लोगों ने कहा कि कुली बस्ती में हिंदू महिलाओं के पास सँजोने के लिए अपना घर नहीं था और उन लोगों ने अपने पुराने घर की हर बात, यहाँ तक कि, धर्म का भी परित्याग कर दिया था।

कुल मिलाकर ऐंड्रूज़ और पिअरसन ने यह दिखाने की कोशिश की है कि गिरमिट प्रथा ने भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को तोड़ दिया और इससे एक नये समाज का जन्म हुआ

[60] ऐंड्रूज़ और पिअरसन, वही : 35.

जहाँ विवाह के लिए जाति और धर्म का बंधन नहीं था। उनके लिए यह भारतीय संस्कृति और नैतिकता का पतन था। ऐसी चीज़ें हिंदू धर्म और भारत के आत्मगौरव के लिए ख़तरे के रूप में देखी गयीं। स्त्रियों के कम अनुपात, गिरमिटियों के बीच वासनात्मक ईर्ष्या और ऑनर किलिंग को उजागर करने के लिए ऐंड्रूज़ और पिअरसन ने स्त्री की यौनिकता को केंद्र में रखा और तर्क दिया कि इन स्त्रियों ने अपनी 'नैतिकता' खो दी थी। यद्यपि बाग़ानों में स्त्रियाँ काम, वेतन और अधिकारों के हिसाब से पुरुषों के बराबर थीं, लेकिन ऐंड्रूज़ और पिअरसन ने उन पर सिर्फ़ यौनिकता की दृष्टि से विचार किया।

गाँधी, आर्यसमाज और गिरमिटिया प्रथा के ख़िलाफ़ गोलबंदी

1913 में भारत के नये गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने जेम्स मकनील और चिमनलाल के नेतृत्व में विभिन्न उपनिवेशों में गिरमिटियों की हालात की जाँच के लिए एक कमेटी बनायी। मैकनील और चिमनलाल भारत सरकार द्वारा जमैका, ब्रिटिश गुयाना, फ़ीज़ी तथा डच उपनिवेश सूरीनाम व डच गुयाना के हालात की जानकारी के लिए भेजे गये थे।[61] उन्होंने वहाँ बाग़ान के प्रबंधकों, संरक्षकों, सरकारी अधिकारियों, गिरमिटियाओं तथा पूर्व गिरमिटियाओं से पूछताछ की। उन्होंने अपनी रपट में इस प्रथा की कुछ बुराइयों तथा अनेक अच्छाइयों की ओर संकेत किया। यह रपट 1914 में प्रकाशित हुई लेकिन भारतीय राष्ट्रवादी इससे संतुष्ट नहीं हुए। श्रीनिवास शास्त्री ने 1916 में कांग्रेस के तीसवें अधिवेशन में कहा :

> दूसरी रपटों की तरह इसमें भी आपको कुछ तथ्य ... कुछ सांख्यिकी और सबसे अधिक भाग उस चीज़ का है जिसे 'वाइटवॉश' कहा जाता है, मिलेगा।[62]

अनेक अख़बारों ने भी इस रपट की आलोचना की। संयुक्त प्रांत के अख़बार *ज़माना* ने लिखा, 'गिरमिटियाओं की हालात से विदेश में बसे सभी भारतीयों की हैसियत घटी है। *जाम-ए-जमशेद* ने रपट की समीक्षा करते हुए गिरमिट प्रथा की आलोचना की। *लीडर* ने कहा कि व्यापक सुधार ही निराकरण है, छोटे -मोटे क़दम पर्याप्त नहीं हैं।[63]

भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस प्रथा के ख़िलाफ़ अब अपने आंदोलन को तीव्र कर दिया। 28 अक्टूबर, 1915 को गाँधी ने बम्बई में एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए मैकनील-चिमनलाल रपट की आलोचना इस तरह की :

> भद्र और सहृदय वाइसराय भारत की विधि संहिता से घृणित गिरमिट प्रथा को हटाना चाहें लेकिन उनके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उनके द्वारा बनाई मैकनील-चिमनलाल कमेटी की रपट के दो मोटे खण्ड थे। भले ही सभी उसके उबाऊ पन्नों को न पढ़ें, लेकिन जो गिरमिट प्रथा की हक़ीक़त जानते थे, उनके लिए यह गहरी रुचि का मामला था। ... रपट की सिफ़ारिश थी कि यह प्रथा वैसी ही चलानी चाहिए जैसी चल रही थी। ... और उसकी संस्तुति से पता चला कि फ़ीज़ी, जमैका, गुयाना और दूसरे उपनिवेशों में आज तक चलने वाली गिरमिट प्रथा को उसके वास्तविक रूप से एक मिनट भी अधिक नहीं चलने दिया जा सकता।[64]

---

[61] जेम्स मकनेल (1869-1938) 1890 से 1915 तक इण्डियन सिविल सर्विस के अधिकारी थे और सेवानिवृत्त होनेवाले थे. राष्ट्रवादी तथा अखण्ड आयरलैण्ड के समर्थक होने के नाते उन्होंने बाद में आयरलैण्ड की आज़ादी के लिए काम किया. देखें, जॉन एल. हिल (1980). चिमनलाल संयुक्त प्रांत की लेजिस्लेटिव असेंबली में भारतीय व्यापारी हितों के प्रतिनिधि राय नत्थीमल बहादुर , सी.आई.ई. के भतीजे थे. विशेष जानकारी के लिए देखें, चीफ़ सेक्रेटरी, यूनाइटेड प्रोविंसेज़, टू कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री; 25 जुलाई 1912, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, नवम्बर 1912, अ प्रोसिडिंग्ज़, 22-26.

[62] रिपोर्ट ऑफ़ द थर्टींथ आईएएनसी, 1915 (बॉम्बे, 1916) : 83.

[63] *ज़माना,* दिसम्बर, 1914; आरएनएन, यूपी, 1915, जेड.ए. जमशेद, 23 फ़रवरी, 1915; आरएनएन, 1915; *लीडर,* 1 जुलाई, 1915; आरएनएन, यूपी, 1915.

[64] द *बॉम्बे क्रॉनिकल,* 29-10-1915, सीडब्ल्यूएमजी, खण्ड 15, 21 मई, 1915; 31 अगस्त, 1917 : 55-56.



गाँधी ने आगे लिखा : 'वास्तव में गिरमिटिया अर्ध-दासत्व की स्थिति है। पहले के दासों की तरह गिरमिटिया मज़दूर भी अपनी आज़ादी नहीं ख़रीद सकता। एक दास को काम न करने के लिए दण्डित किया जाता था; वैसे गिरमिटिया भी। यदि वह लापरवाह है एक दिन काम नहीं करता, अगर ज़ुबान लड़ाता है तो उसे इनमें से किसी भी अपराध के लिए जेल जाना पड़ेगा। एक दास को एक मालिक से दूसरे को बेचा जा सकता था; वैसे ही गिरमिटिया को भी। दास के बच्चे दासत्व को विरासत में पाते थे; कुछ उसी तरह गिरमिटिया के बच्चे एक क़ानून के अधीन हैं जो विशेष रूप से उन्हीं के लिए पारित किया गया है। ... इसके सिवा यह भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि गिरमिटिया प्रथा दासप्रथा के उन्मूलन के बाद आयी और गिरमिटिया मज़दूर को दासों के स्थान पर नियोजित किया गया।'

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सूरीनाम के खेतों में गन्ना काटते हुए भारतीय गिरमिटिया मज़दूर

अपने लम्बे भाषण में विलियम हंटर को उद्‌धृत करते हुए गाँधी ने कहा कि गिरमिटिया प्रथा अर्धदासत्व है।[65] गाँधी ने कहा कि मज़दूरों के हाथ और पैर नियोक्ता से बँधे हैं और प्रवासियों के 'रक्षक' उसी वर्ग से आते हैं जिससे बाग़ान मालिक। गाँधी के अनुसार, इस व्यवस्था ने भारत के राष्ट्रीय स्वाभिमान को लूट लिया है और यह प्रथा भारत की राष्ट्रीय गरिमा और विकास में बाधक है।[66]

गुज़राती पत्रिका *समालोचक* के दिसम्बर के अंक में गाँधी ने 'इण्डेंचर या स्लेवरी' शीर्षक से एक निबंध लिख गिरमिट प्रथा की व्याख्या इन शब्दों में की :

> गिरमिट अंग्रेज़ी शब्द एग्रीमेंट का बिगड़ा हुआ रूप है।[67] लेकिन इस पद का अर्थ सिर्फ़ इतना ही नहीं है। इससे जिस अर्थ का बोध होता है वह एग्रीमेंट से नहीं। इसके लिए इस भाषा में दूसरा शब्द है। पाँच साल के अनुबंध वाले जिस दस्तावेज़ के आधार पर हज़ारों मज़दूर प्रवासी बनते थे और आज भी नटाल और दूसरे देशों में प्रवासी होकर जा रहे हैं उसे मज़दूर और नियोक्ता द्वारा गिरमिट

---

[65] सर विलियम हंटर (1840–1900) 25 साल तक भारत में सेवारत रहे, वे भारतीयों की आकांक्षाओं से सहानुभूति रखते थे और लंदन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के सदस्य थे.

[66] द *बॉम्बे क्रॉनिकल,* 29–10–1915 सीडब्ल्यूएमजी में उद्‌धृत, खण्ड 15 : 56–57.

[67] एग्रीमेंट > ग्रीरमेंट > गीरमिट > गिरमिटिया. गिरमिट और गिरमिटिया शब्द फ़ीज़ी के अनानुबंधित मज़दूरों द्वारा प्रयुक्त हुआ था. वे अपने आवेदन में अपने को गिरमिटिया कहते थे. देखें, नाज़िरात का आवेदन, सी.एस.ओ.एम.पी.850/1903, एनएएफ़; भारतीय राष्ट्रवादियों में गाँधी इस शब्द का उपयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे. बृज वी. लाल (1980) ने अपने पीएचडी शोध *लीव्ज़ ऑफ़ बनयान ट्री : ओरिजिन ऐंड बैकग्राउंड ऑफ़ फ़ीज़ीज नार्थ इण्डिया इण्डेंचर्ड इमिग्रैंट्स 1879–1916,* ऑस्ट्रेलियन नैशनल युनिवर्सिटी में कहा कि यह शब्द उनके

> कहा जाता है। गिरमिट के आधार पर प्रवासी होने वाला मज़दूर गिरमिटिया है। हर साल क़रीब 12,000 ऐसे गिरमिटिया मज़दूर भारत से मुख्यतः ऑस्ट्रेलिया के पास फ़ीज़ी द्वीप, दक्षिण अमरीका के पास जमैका, ब्रिटिश गुयाना और त्रिनिदाद के लिए प्रवासित होते हैं।[68]

गाँधी ने आगे लिखा :

> वास्तव में गिरमिटिया अर्ध-दासत्व की स्थिति है। पहले के दासों की तरह गिरमिटिया मज़दूर भी अपनी आज़ादी नहीं ख़रीद सकता। एक दास को काम न करने के लिए दण्डित किया जाता था; वैसे गिरमिटिया भी। यदि वह लापरवाह है एक दिन काम नहीं करता, अगर जुबान लड़ाता है तो उसे इनमें से किसी भी अपराध के लिए जेल जाना पड़ेगा। एक दास को एक मालिक से दूसरे को बेचा जा सकता था; वैसे ही गिरमिटिया को भी। दास के बच्चे दासत्व को विरासत में पाते थे; कुछ उसी तरह गिरमिटिया के बच्चे एक क़ानून के अधीन हैं जो विशेष रूप से उन्हीं के लिए पारित किया गया है। दोनों में केवल यही अंतर है कि दासत्व जीवन के अंत के साथ ही समाप्त होता था जबकि गिरमिटिया कुछ ख़ास वर्षों के बाद। इसके सिवा ये भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि गिरमिटिया प्रथा दासप्रथा के उन्मूलन के बाद आया और गिरमिटिया मज़दूर को दासों के स्थान पर नियोजित किया गया।[69]

यहाँ गाँधी गोखले और दूसरे राष्ट्रवादियों के गिरमिट प्रथा संबंधी विचारों से भिन्न तथा उन्नीसवीं सदी के मानवतावादियों जैसे जॉन रसेल, जॉन सकॉबल के दृष्टिकोण के क़रीब हैं जिन्होंने पहले ही इस प्रथा की आलोचना की थी और इसे दास-प्रथा का ही रूप कहा था। गाँधी ने इस प्रथा की आलोचना नैतिक और धार्मिक भारतीयों को अनैतिक बनाने के लिए भी की। उन्होंने कहा :

> जिन देशों में वे प्रवास करते हैं वहाँ वे कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा नहीं पाते। उनमें अधिकांश अविवाहित हैं। गिरमिटिया को ढोने वाले हर जहाज़ पर 40 फ़ीसदी स्त्रियों को ले जाने का नियम है। इनमें से कुछ स्त्रियाँ बदनाम होती हैं ... सुदूर जाने पर उनको पीने की लत लग जाती है। जो स्त्रियाँ, भारत में, शराब को कभी छूती नहीं वो कभी-कभी नशे में बेहोशी की हालत में सड़कों पर लुढ़की मिलती हैं।[70]

यह सुस्थापित हो चुका है कि जो कृषक भारत छोड़ कर गये थे उनमें समाज के हर वर्ग के लोग थे। उच्च व मध्यम श्रेणी के लोग अधिक थे। बृजलाल ने दिखाया है कि फ़ीज़ी जाने वाली सभी स्त्रियों में 31.4% मध्यवर्ती जातियों से, 29.1% निचली जातियों से, 9% क्षत्रिय, 4.1% ब्राह्मण और 16.8% मुसलमान थीं।[71] यह भी ध्यान देना ज़रूरी है कि बहुत बार बाग़ानों में जो अविवाहित के रूप में पंजीकृत होते थे, वे विवाहित होते थे और उनमें से बहुत से शादी के लिए तैयार नहीं होते थे क्योंकि वे भारत में अपनी पत्नी को छोड़ कर गये होते थे और अनुबंध की समाप्ति के बाद वापस लौटने के ख़्वाहिशमंद थे। जॉन केली ने माना है कि गाँधी ने पूँजीवाद की आलोचना का विचार पश्चिमी पूँजीवाद विरोधी लेखकों जैसे रस्किन, टॉलस्टॉय आदि से उधार लिया था और

पितामह द्वारा प्रयुक्त हुआ था. क़िस्सा-कहानी के आधार पर बृजलाल को लगता है कि ये फ़ीज़ी के मज़दूर थे जिन्होंने अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट के भोजपुरीकरण के रूप में इसका उपयोग किया. यह दिलचस्प है कि विख्यात भाषाविद् और उत्तर भारतीय कृषक जीवन के संग्राहक ग्रियर्सन ने ऐसे शब्द का प्रयोग बिहार के गिरमिटिया मज़दूर के प्रवसन पर लिखी अपनी विख्यात इन्क्वायरी रिपोर्ट में नहीं किया. पिचर और ग्रियर्सन ने ऐसे अनेक शब्दों जैसे रिक्रूटर के लिए अरकाटी, मॉरिशस के लिए मिरिच, त्रिनिदाद के लिए चिनिचाट आदि का ज़िक्र किया, लेकिन एग्रीमेंट के लिए गिरमिट या गिरमिटिया का अथवा इस प्रथा के लिए अनपढ़ों के किसी दूसरी भाषा का ज़िक्र नहीं किया. यहाँ तक कि सांडर्सन, मैकनील-चिमनलाल भी अपनी जाँच रिपोर्ट में ऐसे किसी शब्द का ज़िक्र नहीं करते. ऐंड्रूज़ और पिअरसन अपनी स्वतंत्र रिपोर्ट में गिरमिटिया भारतीयों के लिए गिरमिटवाला शब्द का प्रयोग करते हैं.

[68] *समालोचक,* दिसम्बर, 1915 इन सीडब्लूएमजी, खण्ड 15 : 74.

[69] वही : 74.

[70] वही : 75.

[71] बृज वी. लाल (2004) : 137

कांग्रेस पार्टी मिशनरियों, दास-प्रथा-विरोधियों तथा यूरोपीय गिरमिट-विरोधियों के साथ गिरमिटिया विरोधी अभियान में शामिल हो गयी।[72]

आर्य समाज और कलकत्ता के मारवाड़ी समुदाय ने भी गिरमिट विरोधी आंदोलन का समर्थन किया।[73] मारवाड़ी संगठन ने अरकाटियों द्वारा फँसाए लोगों को क़ानूनी सहायता देना शुरू किया। 1910 के शुरुआत में एक घटना ने मारवाड़ी समुदाय को गिरमिट विरोधी अभियान में सक्रियता से शामिल होने को मजबूर कर दिया। इसके पीछे एक मारवाड़ी महिला लक्ष्मी का प्रसंग है जिसे अपने पति के घर आगरा से अजमेर जाते समय एक अरकाटी द्वारा फँसा लिया गया था।[74] इस घटना के बाद मारवाड़ी समुदाय ने मारवाड़ी सहायक समिति के तहत गिरमिट प्रथा और भर्ती के ख़िलाफ़ दबाव बनाना शुरू कर दिया।[75] गिरमिट प्रथा के विरुद्ध आंदोलन में आर्य समाज का असर संयुक्त प्रांत और बिहार में तथा मारवाड़ी सहायक समिति का प्रभाव कलकत्ता और उसके आस-पास के इलाक़ों में था।

14 अगस्त ,1914 को बनारस के सरकारी प्रवसन एजेंट ने अपने कार्यालय को गिरमिट प्रथा की समाप्ति के लिए होने वाले एक सभा के बारे में लिखा।[76] उसने चेतावनी दी कि ब्रिटेन के दास-प्रथा विरोधी समाज के तर्ज़ पर एक संगठन बना है जिसका लक्ष्य गिरमिट प्रथा का उन्मूलन है। इस संगठन के सदस्य जाति आग्रहों वाले थे जिनका गुप्त 'राजनीतिक लक्ष्य' था। वे गिरमिटिया प्रथा के समर्थन में कुछ भी नहीं सुनना चाहते थे और इस आधार पर इस प्रथा का विरोध करते थे कि समुद्र पार करने से जाति चली जाती है।[77] इस संगठन के सदस्य भर्ती वाले ज़िलों में परचा बाँट रहे थे और लोगों को अरकाटियों से प्रभावित न होने की चेतावनी दे रहे थे। प्रवसन अधिकारी ने इसके प्रमाण के रूप में गिरमिट विरोधी पर्चे को भी संलग्न किया जिसे उन ज़िलों में बाँटा जा रहा था :

सावधान! सावधान! सावधान!
डिपो वालों से सावधान!
यह नौकरी नहीं बल्कि बहकाना है
उनके बहकावे में मत आओ, मूर्ख बन जाओगे
वो तुम्हें समुद्र पर ले जाएँगे
जमैका फ़ीज़ी डमरा मॉरिसस
ब्रिटिश गयाना त्रिनिदाद होंडुरस
ये टापू नहीं जेल हैं
बचो! इन डिपो वालों से बचो!

गिरमिटिया विरोधी संगठन के संयुक्त प्रांत के सदस्य भी साथ-साथ बाज़ारों, हाटों में प्रवसन की निंदा करते हुए भाषण देते थे। उन्होंने इलाहाबाद और दिल्ली में अपनी शाखाएँ बना ली थीं और मथुरा, इलाहाबाद, बनारस तथा उनके नज़दीकी इलाक़ों को भाषण का केंद्र बनाया क्योंकि वहाँ के प्रवासियों की संख्या सबसे अधिक थी। अरकाटियों पर हमला भी किया गया। मार्सडेन ने ऐसी घटनाओं

---

[72] जॉन.डी. केली (2005), वही : 63.

[73] मारवाड़ी वैश्य जाति के होते हैं जो राजस्थान के मारवाड़ से निकल कर पूरे भारत में फैले. कलकत्ता में 1897 के बाद ये लोग बेहद अमीर, सफल व्यापारी और उद्यमी के रूप में उभरे और मारवाड़ी के नाम से लोकप्रिय हुए. देखें, ऐनी हार्डग्रेव (2004). मारवाड़ी चौदहवीं सदी से घूमने वाला व्यापारी और उद्यमी समुदाय रहा है. देखें, बनारसी दास (1943).

[74] लक्ष्मी के केस को विस्तार से जानने के लिए देखें, जीओआई, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, एएनओएस. 30-33 अप्रैल ,1916 ; एनएआई.

[75] मारवाड़ी सहायक समिति की स्थापना बंगाल के अमीर मारवाड़ियों द्वारा विपरीत परिस्थितियों में मारवाड़ी युवकों के शारीरिक, नैतिक और बौद्धिक उत्थान के लिए और असहाय मारवाड़ी परिवारों की सहायता के लिए किया गया था. इसका कार्यालय 61 कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता था. देखें जीओआई, सीआई, एमिग्रेशन, (बी) प्रोसीडिंग्ज़, एनओएस. 30-33, अप्रैल, 1916; एनएआई.

[76] आईओआर/पी/9778, ब्रिटिश लाइब्रेरी; गवर्नमेंट एमिग्रेशन एजेंट, बनारस टू कॉलोनियल ऑफ़िस, 23 जुलाई, 1914; जीओआई, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, (ए) प्रोसीडिंग, दिसम्बर, 1915; एन ए आई.

[77] वही.

को औपनिवेशिक प्रवसन के ख़िलाफ़ धर्मयुद्ध कहा और बताया कि इससे प्रवसन को इच्छुक लोगों की संख्या में थोड़ी कमी भी आयी।[78]

कलकत्ता में मारवाड़ी सहायक समिति के सदस्य प्रवासियों के नज़दीकी रिश्तेदारों से मिलकर परिवार के लोगों को प्रवसन पर भेजने के लिए हतोत्सहित करते थे। कभी-कभी ये मारवाड़ी गिरमिटिया मज़दूरों को देहात से कलकत्ता लाने वाली रेलगाड़ी पर छापा भी डालते थे। मार्सडेन के विचार में, ये संगठन या तो भारत के राजनीतिक-सामाजिक उत्थान के लिए बनी संस्था आर्य समाज के नेतृत्व में या उसके उकसाने पर बनाए गये थे। आर्य समाज के लक्ष्य को समझाने के लिए मार्सडेन ने वेलेंटाइन चिरोल के *इण्डियन अनरेस्ट* को उदधृत किया है :

> यद्यपि आर्य समाज के नेता शिक्षा और कभी-कभी संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय लोग हैं, पर वे जानते हैं कि कैसे अपने धार्मिक सिद्धांतों को लोकप्रिय बनाकर नीची जातियों और विशेष रूप से कृषिरत आबादी को आकर्षित किया जाए। इसमें सबसे दुखद बात देशी सिपाहियों विशेषकर जाटों और सिखों, जिनसे कई मायनों में उनका जुड़ाव है, के बीच उनका मिथ्या प्रचार है। आर्य समाजियों का मुख्य प्रयास भर्ती को रोकना है और उनके गुप्तचर देशी सिपाहियों के बीच भी मौजूद हैं।[79]

यह रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है कि 1857 के विद्रोह में अंग्रेज़ों के विरुद्ध भाग लेने वाले अनेक सिपाही जेल से बचने के लिए गिरमिटिया भर्ती के लिए अपना नाम लिखा चुके थे। कई मामलों में उन लोगों ने पहचान छुपाने के लिए अपना नाम और अपनी जाति बदल ली थी।[80] आर्य समाज चाहता था कि ये सिपाही और इनके वंशज भारत लौट जाएँ। गिरमिटिया विरोधी आंदोलन का प्रभाव बिहार में भी था। बड़ी संख्या में पर्चे बाँटे गये, गिरमिटिया प्रथा के ख़िलाफ़ भाषण हुए और पटना, मुज़फ़्फ़रपुर तथा दरभंगा में अरकाटियों के ख़िलाफ़ लोगों को चेतावनी दी गयी।[81] यहाँ के मुख्य नेता स्वामी सत्यदेव थे जिन्होंने पर्चे प्रकाशित किये और बँटवाए तथा मुज़फ़्फ़पुर और दरभंगा में गिरमिटिया के विरुद्ध भाषण दिया।[82] मुज़फ़्फ़रपुर में गिरमिटिया के ख़िलाफ़ सक्रिय दूसरे नेता पुरुषोत्तमदास थे। उन्होंने उपनिवेशों में गिरमिटिया प्रथा के ख़िलाफ़ हिंदी में बीस हज़ार पर्चे छापे। इन्हें बड़े पैमाने पर ज़िलों में बँटवाया गया। एक पर्चा इस तरह है :

> बहकाने वालों से बचिए
> सावधान सावधान सावधान
> यह नौकरी नहीं बंधन है
> उनकी बहकावे में ना आएँ
> वो आपको तबाह कर देंगे
> पैसे की बजाय विपत्तियाँ बरसेंगी
> वो आपको समुद्र पार ले जाएँगे

मालवीय प्रस्ताव और गिरमिटिया प्रथा का अंत

गिरिमिट के ख़िलाफ़ प्रचार और गोलबंदी के इस गर्म माहौल में मदन मोहन मालवीय ने भारतीय गिरमिट प्रथा के उन्मूलन के लिए 20 मार्च, 1916 को भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रस्ताव पेश किया। इस अवसर पर मालवीय ने इस प्रथा की आलोचना करते हुए उन पुरानी बातों को दुहराया जो

---

[78] वही.

[79] वही.

[80] देखें, मरीना कार्टर ऐंड क्रिस्पिन बेट्स (2010) : 51 -73.

[81] देखें, लेटर ऑफ़ सेवंथ जून, 1915; राँची, इ.एल.एल. अहमद, सेक्रेटरी जीओबी ऐंड ओडीशा, म्युनिसिपल डिपार्टमेंट टू सेक्रेटरी, जीओआई, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, (ए) प्रोसीडिंग, एन ओ एस 43, दिसम्बर, 1915.

[82] वही.

राष्ट्रवादियों ने पहले के प्रस्तावों के समय कहा था। उदाहरण के लिए, उन्होंने अनुबंधकों और अनुबंधित 'साधारण ग्रामीणों' के बीच सम्प्रेषण और क़ानूनी-साक्षरता के अंतर की बात पर ज़ोर दिया और इस प्रथा के क़ानूनी प्रावधानों के आधार को अन्यायपरक बताया। ऐसी व्यवस्था में काम करने के लिए यदि एक बार कोई ग्रामीण / किसान बँध गया तो वह आज़ाद नहीं हो सकता क्योंकि उसके पास इसके लिए कोई साधन नहीं था।

गिरमिटिया प्रथा के ख़िलाफ़ उनका दूसरा तर्क इसके सेवा के स्वरूप को लेकर था जिससे गिरमिटिया को सहमत होना पड़ता था। कुलियों से अक्सर वह काम नहीं कराया जाता था जिसके लिए उन्हें अनुबंधित किया गया था। मालवीय ने कहा कि कुलियों को बूचड़खाना में मांस काटने के लिए मजबूर किया जाता था। यहाँ उन्होंने ऐंड्रूज़ को पुनः कोट किया है :

> कृषि कार्य हेतु लाए गये एक निम्न जाति के हिंदू को बूचड़खाने में मांस काटने को दिया गया। हमारे पूछने पर कि हिंदू होने के बावजूद वो ऐसा काम कैसे कर सकता है, उसने कहा कि वो इसे नहीं छोड़ सकता क्योंकि उसे ऐसा करने का आदेश दिया गया था।
>
> एक पूर्व गिरमिटिया, कबीरपंथी को ऐसे ही काम करने को मजबूर किया गया था। उसने हमें बताया कि वो ऐसा करने से लगातार मना किया और उसे जेल में डाल दिया गया। हमने उसका रिकॉर्ड देखा और पाया कि प्रवास के दौरान उसे 692 दिनों का कारावास दिया गया था।[83]

उन्होंने कहा कि प्रवासियों को ले जाने वाले जहाज़ पर प्रवासी बहुत ख़राब हालात के ख़िलाफ़ विरोध करते थे और कभी-कभी भागने के लिए हुगली नदी में कूद जाते या समुद्र जाकर आत्महत्या कर लेते थे। उन्होंने कार्य के घंटों को, विशेषकर महिलाओं के लिए, निर्दयी बताया। उन्होंने दावा किया की छोटे बच्चे वाली महिलाओं को भी दिन में 7 से 10 घंटा काम करना पड़ता था। जिन गिरमिटियाओं ने विरोध किया उनकी दिहाड़ी कम कर दी गयी और उनका भोजन महँगा कर दिया गया।

उनकी आलोचना का दूसरा आधार बड़ी संख्या में गिरमिटियों का अभियोजन था। भारतीयों को न सिर्फ़ आपराधिक आचरण बल्कि दूर व्यवहार और गालियों के लिए भी अभियोजित किया गया था।[84] सैंडर्सन कमेटी और 1909 और 1913 की दो कमिटियों के आँकड़ों के आधार पर मालवीय ने दिखाया कि इस प्रथा में ओवरसीयर के हाथ में बहुत शक्ति थी जो चुप रहने और सर झुका कर आज्ञा पालन के अलावा सब कुछ को अपराध समझते थे। मालवीय ने महिलाओं की कमी के कारण बढ़ती अनैतिकता, भारतीय विवाह संस्था की अवैधता जैसी महिलाओं की यौनिकता के अनेक सवालों को उठाया जिसके कारण बाग़ानों में अकसर आत्महत्या और हत्या होती रहती थीं। मालवीय के गिरमिटिया उन्मूलन के प्रस्ताव में महिलाओं की यौनिकता और राष्ट्रीय गर्व केंद्रीय तर्क थे।

यद्यपि मालवीय द्वारा दिये तर्क कुछ मामलों में वैध थे,जैसा मैंने ऊपर दिखाया है, लेकिन वे उस समय गिरमिटियाओं की समस्या और सरोकारों को सम्बोधित करने के बजाय इस प्रथा के ख़िलाफ़ राष्ट्रवादी एजेंडे को आगे बढ़ा रहे थे। शुरू में ब्रिटिश सरकार अनिच्छुक थी लेकिन राष्ट्रवादी आंदोलन के ख़िलाफ़ जल्दी ही झुक गयी। यह उस समय हुआ जब बाग़ान मालिकों को अब और भारतीय मज़दूरों की ज़रूरत नहीं थी। जैसा कि सिडनी मिंट्ज ने बताया है, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वहाँ स्थायी रूप से रहने वालों की संख्या बढ़ गयी थी,चीनी की क़ीमत गिर गयी थी और 1917 तक युरोप तथा उत्तरी

---

[83] गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, कॉमर्स ऐंड इण्डस्ट्री, एमिग्रेशन, (ए) प्रोसीडिंग. 8 जुलाई, 1916; भारतीय गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन के लिए पण्डित मदन मोहन मालवीय का प्रस्ताव (अब से मालवीय प्रस्ताव) 1916 : 4.

[84] इसी विषय पर दीपेश चक्रवर्ती ने कोलकत्ता के मिलों में अधिकारियों के कार्य करने के तरीक़ों की जाँच की है और दिखाया है कि कैसे प्रबंधकों की भाषा व्यवहार और आदतों में ख़राबी के कारण कामगारों को उनके ख़िलाफ़ खड़ा कर दिया, उन्होंने कामगारों से 'माई-बाप' का रिश्ता जबरिया बनाना चाहा. दीपेश चक्रवर्ती : 124 -146.



गिरमिटिया उन्मूलन अभियान ने दास प्रथा उन्मूलन आंदोलन को प्रतिबिम्बित किया। ... मालवीय प्रस्ताव भारतीय राष्ट्रवादियों का पहला बड़ा प्रस्ताव था जिसे इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल ने पारित किया था— यद्यपि इसका आर्थिक प्रभाव ऐसा नहीं था कि इसे स्वीकार करने में अधिकारियों को कोई समस्या हो। उन्होंने केवल अपने हित, राजनीतिक वर्चस्व और आर्थिक लाभ का संवर्धन किया था। इस मामले में उन्होंने सम्भ्रांत भारतीय राष्ट्रवादियों को बग़ैर किसी विशेष प्रयास के अपनी तरफ़ करने में सफलता पा ली थी। इस मामले में सिर्फ़ भारतीय मज़दूरों को हानि हुई क्योंकि उनको रोज़गार के अवसर से हाथ धोना पड़ा।

अमेरिका में चीनी उद्योग का खूब विकास हुआ था। इससे दुनिया भर में बाग़ानी व्यवस्था में कमी आयी और बाग़ानी से 'केंद्रीय मिल व्यवस्था' की दिशा में विकास हुआ जहाँ खेती छोटे पैमाने के मालिकों के हाथ में चली गयी।[85] अत: ब्रिटिश सरकार अपेक्षाकृत जल्दी झुक गयी और उसने मालवीय के गिरमिटिया उन्मूलन प्रस्ताव को इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि वे लोग दूसरे रूप में (गिरमिटिया के बजाय किसी अन्य अनुबंध पर) भारतीय मज़दूरों के प्रवसन को सुनिश्चित करेंगे। जब भारत सरकार और औपनिवेशिक सरकार अनेक अधिकारियों से गिरमिटिया प्रथा का विकल्प खोजने को कह रही थी उस समय भारत भर में इस प्रथा के ख़िलाफ़ विरोध बढ़ रहा था।[86] 9 जनवरी को इलाहाबाद में भारत कोकिला कही जाने वाली सरोजिनी नायडू ने एक महती सभा को सम्बोधित करते हुए कहा :

> मैं एक महिला हूँ, यद्यपि आप अपनी माताओं और बहनों के अपमान को महसूस न कर सकें, मैं एक महिला होने के कारण उस अपमान को समझती हूँ जो मेरी बहनों को दिया गया है ... ऐसी महिलाएँ जिनकी स्मृति में सीता है जिसने अपने मान को चुनौती मिलने पर बर्दाश्त नहीं किया और धरती माता को बदले के लिए पुकारा और उसको बदला दिलाने के लिए धरती फट गयी ... मैं ऐसी महिलाओं के लिए आयी हूँ जिनकी स्मृति में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी है जिसने अपमान के बजाय चिता में जलना बेहतर समझा। मैं उन महिलाओं के लिए बोलने आयी हूँ जो सावित्री – जिसने मौत को अँगूठा दिखाकर उसके दरवाज़े से अपने पति को वापस लौटाया था – की तरह अपने अवर्णननीय प्रेम की शक्ति से विदेशी उपनिवेशों में पशुता के स्तर तक गिर चुके अपने पतियों को वापस लौटा लाई हैं।

---

[85] सिडनी मिंट्ज़ (1985).

[86] ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग द्वारा पारित प्रस्ताव, लखनऊ, 31 दिसम्बर, 1916; द बंगाल प्रोविंशियल कांग्रेस कमेटी, 31 दिसम्बर, 1916; इलाहाबाद, 1917; तूतीकोरन, 30 जनवरी, 1917; मदुरै, 31 जनवरी, 1917; यूनाइटेड प्रोविंसेज़ कांग्रेस कमेटी, 31 जनवरी, 1917; बेलगाम, 3 फ़रवरी, 1917; पंजाब प्रोविंशियल मुस्लिम लीग, 4 फ़रवरी, 1917; त्रिचिनापल्ली, 4 फ़रवरी, 1917; होम रूल लीग की महिला शाखा,

> ...मैं आपसे हत्या की शिकार उन बहनों- जिनके बारे में ऐंड्रूज़ ने मुझे बताया[87] — के नाम पर पूछती हूँ जो अपमान की ज्वाला से बचने के लिए मौत के मुँह में हैं। मैं आपसे उन दो भाइयों के नाम पर पूछती हूँ जिन्होंने अपनी बहन का ख़ून बहाकर अपने परिवार और धर्म की रक्षा की लेकिन उसके मान को दूषित नहीं होने दिया।[88]

जिसे हम 'ऑनर किलिंग' कहेंगे, यहाँ उसकी एक महिला राष्ट्रवादी नेत्री द्वारा प्रशंसा होती है। सरोजिनी नायडू औरत की हत्या को शहादत कह कर उचित ठहराती हैं, बशर्ते वह भारतीय पितृसत्तात्मक रिवाजों की वाहक बनी रहे। एंड्रिया मेजर ने सती और भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में कहा भी है, 'राष्ट्रवादी नयी महिला के त्याग,पवित्रता और संयम के लिए सती एक शानदार उदाहरण है।' इसलिए गिरमिटिया की बहस में, स्त्री हों या पुरुष, भारतीय राष्ट्रवादी हिंदू परम्परा और भारतीय महिला की आदर्श की रक्षा के लिए औरतों की हत्या जायज़ ठहरा रहे थे।[89]

जब औपनिवेशिक सरकार द्वारा गिरमिट प्रथा की समाप्ति के बारे सोचा जा रहा था तब कवि मैथिलीशरण गुप्त ने गिरमिटिया मज़दूरों के दु:ख और विदेशी प्रवास में भारत को हुए नुक़सान पर लम्बी कविता लिखी। उन्होंने अपनी 'किसान' शीर्षक कविता में किसानों की दयनीय हालात और उसकी मज़बूरी में फ़ीज़ी प्रवास, अरकाटियों द्वारा अशिक्षित किसानों को दिया गया धोखा और बाग़ानों में उनके दु:ख के बारे में लिखा :

> एक जन ने त्रिवेणी तीर पर मुझसे कहा
> तरस मुझको आ रहा है देख के तुमको अहा!
> तुम दुखों से दिखते हो, क्या तुम्हें कुछ कष्ट है?
> कठिन है निर्वाह भी यह देश ऐसा नष्ट है
> परंतु अब चिंता नहीं, तुम पर हुई प्रभु की दया
> आज लो बस आज ही से दिन फिरे दु:ख मिट गया
> वस्त्र-भोजन और पंद्रह का महीना, धाम भी
> काम भी ऐसा की जिसमें नाम भी, आराम भी

'फ़ीज़ी' उपशीर्षक में वे लिखते हैं :

> अधम अरकाती कहता था फ़ीज़ी स्वर्ग है भू पर
> नभ के नीचे रह कर भी वह चला गया है ऊपर
> मैं कहता हूँ फ़ीज़ी स्वर्ग है तो फिर नर्क कहा है
> नर्क कहीं हो किंतु नर्क से बढ़ कर दशा यहाँ है

गुप्त ऐंड्रूज़ और पिअरसन की भी गिरमिटियों व कुली प्रथा की समाप्ति के लिए अथक कार्य के लिए प्रशंसा करते हैं :

> दो सहृदय साहब शीघ्र वहाँ पर आये
> दु:ख देख हमारा चार नेत्र भर लाए

कुम्भकोणम, 7 फ़रवरी, 1917; कोकानाडा, 15 फ़रवरी, 1917; इलाहाबाद ,16 फ़रवरी, 1917.

[87] ऐंड्रूज़ ने अपनी रिपोर्ट में उस कहानी का ज़िक्र किया जो एक मिशनरी ने उनको सुनाई थी : एक प्रतिष्ठित हिंदू परिवार के दो भाई अपनी बहनों के अभिभावक थे. उन्होंने हिंदू रीति से उसके योग्य वर से शादी करवाई. रीति का पूरे विधान से पालन हुआ, तभी दूसरे आदमी ने हस्तक्षेप किया और एमिग्रेशन कार्यालय में मारिट के माध्यम से शादी कर ली. मारिट क़ानूनी था. हिंदू रीति की शादी अवैध हो गयी. इसकी क्षतिपूर्ति का कोई उपाय नहीं था. सुधार का कोई रास्ता न देख भाइयों ने अपनी बहन की हत्या कर दी और ख़ुद को गिरफ़्तार करा लिया. पेशी के समय उन्होंने माना कि उन लोगों ने धर्म और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए ऐसा किया था. उन्हें फाँसी दे दी गयी. देखें, ऐंड्रूज़ ऐंड पिअरसन रिपोर्ट.

[88] सरोजिनी नायडू का भाषण 'गिरमिट दिवस : कमेमोरेटिंग 125 इयर्स ऑफ़ गिरमिटियाज़ इन फ़ीज़ी', नामक पुस्तिका में संकलित किया गया, जिसका आयोजन नैशनल फ़ॉर्मर्स यूनियन ने किया था, फ़ीज़ी : 62.

[89] एंड्रिया मेजर (2008) : 232.

ऐंड्रूज़ – पीयरसन विदित नाम हैं उनके
मनुजोचित मंगल मनस काम हैं उनके

गुप्त ने गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन के लिए भारत के गवर्नर लॉर्ड हार्डिंग की भी प्रशंसा की है :

समझी भारत सरकार अंत में बातें
निज कुली प्रथा के साथ यह की घातें
थे बड़े लाट हार्डिंग— भला हो उनका
सह सके ना लगना न्याय दण्ड में घुन का
थी तीन नारों में जहाँ एक ही नारी
टूटी आख़िर वह कुली प्रथा व्यभिचारी

एक भोजपुरी कवि बाबू रघुवीर नारायण ने एक पूरबी (भोजपुरी गीत की एक विधा) की रचना की जिसमें भारत को पृथ्वी के स्वर्ग के रूप में चित्रित किया गया और रूपक के माध्यम से बताया गया कि गिरमिटिया मज़दूर कैसे भारत की कल्पना करते हैं और वहाँ वापस लौटने के सपने देखते हैं। बीसवीं सदी की शुरुआत में जब गिरमिटिया विरोधी आंदोलन अपने शबाब पर था तब उनका 'बटोहिया' शीर्षक गीत बहुत लोकप्रिय हुआ। लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया के लिए जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 1920 में जदुनंदन सहाय से इस पूरबी गीत को अपने ग्रामोफ़ोन पर रिकॉर्ड किया था :

सुंदर सु भूमि भैया भारत के देशवा से
मोर प्राण बसे हिम खोह रे बटोहिया

राष्ट्रवादी अभियान से प्रभावित होकर उन्नीसवीं सदी के मध्य के पण्डित बेनीराम के बिदेसिया की तर्ज पर अनेक लोक गीत रचे गये। बाद में भिखारी ठाकुर द्वारा बिदेसिया की पुनर्प्रस्तुति बहुत लोकप्रिय हुई जिसमें गिरमिटिया-नियोजन में धोखाधड़ी और चीनी के बाग़ानों के कठिन जीवन को चित्रित किया गया था।[90] बिदेसिया की थीम पर लिखे एक कविता को देखा जा सकता है :

फिरंगिया के रजवा में छूटा मोर देशवा हो
गोरी सरकार चली चल रे बिदेसिया
भोली हमें देख अरकती भरमाए हो
अँगूठा लगाई गाएले पाँच साल से बिदेसिया

इस संदर्भ में गिरमिटिया उन्मूलन अभियान ने दास प्रथा उन्मूलन आंदोलन को प्रतिबिम्बित किया। यह बहुत बड़ा नैतिक अभियान था जिसका गहरा राजनीतिक महत्त्व था। मालवीय प्रस्ताव भारतीय राष्ट्रवादियों का पहला बड़ा प्रस्ताव था जिसे इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल ने पारित किया था— यद्यपि इसका आर्थिक प्रभाव ऐसा नहीं था कि इसे स्वीकार करने में अधिकारियों को कोई समस्या हो। उन्होंने केवल अपने हित, राजनीतिक वर्चस्व और आर्थिक लाभ का संवर्धन किया था। इस मामले में उन्होंने सम्भ्रांत भारतीय राष्ट्रवादियों को बग़ैर किसी विशेष प्रयास के अपनी तरफ़ करने में सफलता पा ली थी। इस मामले में सिर्फ़ भारतीय मज़दूरों को हानि हुई क्योंकि उनको रोज़गार के अवसर से हाथ धोना पड़ा।

निष्कर्ष

गिरमिट प्रथा के ख़िलाफ़ आंदोलन की शुरुआत बाग़ानों में भारतीय गिरमिटिया भाइयों और बहनों की कठिनाइयों और समस्याओं के कारण नहीं हुई थी। बल्कि इसका कारण उपनिवेशों, विशेषकर दक्षिण

---

[90] पण्डित बेनीराम भारतेंदु हरिश्चंद्र के समकालीन और *कजरी* (भोजपुरी गीत का एक प्रकार) के महान रचयिता थे. 1860 के आसपास बेनीराम ने *बिदेसिया* शीर्षक कजरी की रचना की. देखें, दुर्गा प्रसाद सिंह, वही : 142. बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भिखारी ठाकुर ने *बिदेसिया* शीर्षक नाटक की रचना की जो उत्तर भारत में बहुत लोकप्रिय हुआ. इस नाटक की विषयवस्तु नयी ब्याहता या परिवार से जुदाई है. देखें, *भिखारी ठाकुर रचनावली* (2005).

अफ़्रीका, में स्वतंत्र भारतीय प्रवासियों द्वारा राजनीतिक और नागरिक अधिकारों की बराबरी की इच्छा थी जिसने बीसवीं सदी की शुरुआत में विरोध की आग भड़का दी। बीसवीं सदी के पहले दशक तक गिरमिटिया मज़दूर सम्भ्रांत भारतीय राष्ट्रवादियों की चिंता के केंद्र में नहीं थे। दक्षिण अफ़्रीका के अनानुबंधित भारतीय और भारतीय राष्ट्रवादी दोनों ने प्रवासी 'भारतीय कुलियों' से अपने को अलग दिखाया। भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा गिरमिटिया प्रवास के विरोध के मूल में उनका भारतीय व्यापारियों और मध्यवर्गीय प्रवासियों का दक्षिण अफ़्रीका के राजनीतिक और नागरिक क्षेत्र में 'कुली' के सामान व्यवहृत किये जाने के भय से जुड़ा था। गिरमिटिया प्रवसन के ख़िलाफ़ भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन में (जिस तरह इसे सार्वजनिक जीवन में ले जाया गया) इस प्रथा की शोषणवादी प्रकृति दूसरे दर्जे का मुद्दा थी किंतु बीसवीं सदी के दूसरे दशक से गिरमिटियायों का मुद्दा अहम होने लगा जब फ़ीज़ी में भारतीय औरतों के साथ अभद्र व्यवहार के समाचार मिलने लगे। किंतु यह विडम्बनापूर्ण है कि काम-काजी महिलाओं को यौन वस्तु के रूप में देखा गया और उनकी नैतिकता राष्ट्रवादियों और औपनिवेशिक सरकार के बीच रस्साकशी का कारण बन गयी।

संदर्भ

ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग द्वारा पारित प्रस्ताव, लखनऊ, 31 दिसम्बर, 1916.

आशुतोष कुमार (2013), 'एंटी-इण्डेंचर्ड भोजपुरी फॉक सांग ऐंड पोएम फ्रॉम नॉर्दर्न इण्डिया, मैन इन इण्डिया', खण्ड 93 अंक 4, अक्टूबर-दिसम्बर.

....................(2017), *कुलिज ऑफ़ द अम्पायर; इण्डेचर्ड इण्डियंस इन द सुगर कॉलोनिज,* 1830-1920, केम्ब्रिज प्रेस, नयी दिल्ली.

इण्डिया ऑफ़िस रिकॉर्ड/पी सीरीज़/9778, ब्रिटिश लाइब्रेरी; गवर्नमेंट एमिग्रेशन एजेंट, बनारस टू कॉलोनियल ऑफ़िस, 23 जुलाई, 1914.

एंड्रिया मेजर (2008), 'द बर्निंग ऑफ़ सम्पति कौर : सती ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ इमेरिअलिज़म, नैशनलिज़म ऐंड रिवाइवलिज़म इन 1920 इण्डिया', *जेण्डर ऐंड हिस्ट्री,* खण्ड 20, अंक 2, अगस्त.

एम.के.गाँधी (1924/2009), *दक्षिण अफ़्रीका में सत्याग्रह का इतिहास,* गुजराती से अनुवाद (1924), सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली.

.... (1927), *एन ऑटोबायोग्राफ़ी, और द स्टोरी ऑफ़ माय एक्सपेरिमेंट विथ ट्रूथ,* नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद.

एस.एच. फ्रेमेंटल (1906), *रिपोर्ट ऑन द सप्लाई ऑफ़ लेबर इन द यूनाइटेड प्रोविंसेस ऐंड बंगाल,* लखनऊ.

ऐनी हार्डग्रेव (2004), *कम्युनिटी ऐंड पब्लिक कल्चर : द मारवाड़ीज़ इन कलकत्ता,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी, (सीडब्ल्यूएमजी), खण्ड 2, खण्ड 11.

कुमकुम संगारी और सुदेश वैद (1989), *रिकास्टिंग वुमॅन : एसेज़ इन कॉलोनियल हिस्ट्री,* काली फॉर वुमॅन, नयी दिल्ली.

क्रेन (1980), *एड ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियन रीसेस्सेड,* कोलम्बिया, साउथ एशियन बुक्स.

कॉलोनियल सेक्रेटरी ऑफ़िस मिनट्स पेपर्स, 8779 /13; 6609 /14, नैशनल आर्काइव्ज़ ऑफ़ फ़ीज़ी.

गर्वमेंट ऑफ़ इण्डिया, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, न. 30-33 अप्रैल,1916.

गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, कॉमर्स ऐंड इण्डस्ट्री, एमिग्रेशन, (ए) प्रोसीडिंग. 8 जुलाई, 1916; भारतीय गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन के लिए पण्डित मदन मोहन मालवीय का प्रस्ताव, 1916.

गोण्डा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, 1905.

चीफ़ सेक्रेटरी, यूनाइटेड प्रोविंसेज़, टू कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री; 25 जुलाई 1912, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, नवम्बर 1912, (ए) प्रोसिडिंग्ज़.

ज़माना, दिसम्बर, 1914; आरएनएन, यूपी, 1915, जेड.ए. जमशेद, 23 फ़रवरी, 1915; आरएनएन, 1915; *लीडर,* 1 जुलाई, 1915; आरएनएन, यूपी, 1915.

जॉन एल. हिल (1980), 'ए.पी. मैकडोनल ऐंड द चेंजिंग नेचर ऑफ़ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, 1885–1905',.आर.आई.

जॉन डी. केली (2005), *अ पॉलिटिक्स ऑफ़ वर्च्यू : हिंदुइज़म, सेक्शुअलिटी ऐंड काउंटर कॉलोनियल डिस्कोर्स इन फ़ीजी,* द युनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, न्यूयार्क.

धीरा वर्मा (2000), 'फ़ीज़ी के हिंदी लोकगीत : गिरमिटियाओं के मौखिक दस्तावेज़', *गगनांचल,* अप्रैल–जून.

तोताराम सनाढ्य (1914), *.फ़ीज़ी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष,* भारती भवन, फ़िरोज़ाबाद, उप्र, कुंवर हनुमंत सिंह रघुवंशी द्वारा राजपूत एंग्लो ऑरिएण्टल प्रेस में मुद्रित, आगरा.

द बॉम्बे क्रॉनिकल, 29–10–1915, सीडब्ल्यूएमजी, खण्ड 15, 21 मई, 1915; 31 अगस्त, 1917.

द बॉम्बे क्रॉनिकल, 29–10–1915 साइटेड इन सी.डब्ल्यू एम.जी. खण्ड 15.

दीपेश चक्रवर्ती, 'ऑन डिफ्यिंग ऐंड डिफिंग अथॉरिटी : मैनेजर्स ऐंड वर्कर्स इन द जुट मिल्स ऑफ़ बंगाल सिरका 1890 –1940', पास्ट ऐंड प्रेजेंट, नम्बर 100 [अगस्त, 1983].

परमेश्वरम पिल्लै (1896), *रिपोर्ट ऑफ़ एलेवेंथ कांग्रेस, 1895,* पूना.

पार्थ चटर्जी (1993), *द नेशन ऐंड इट्स फ्रैगमेंट्स : कॉलोनियल ऐंड पोस्टकॉलोनीअल हिस्टरीज़,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

पार्लियामेंट्री पेपर्स (1910), (सीडी 5192), *रिपोर्ट ऑफ़ कमेटी ऑन एमिग्रेशन फ्रॉम इण्डिया तो क्राउन कॉलोनीज़ ऐंड प्रोटेक्टोरेट्स.*

पी.पी. महापात्र (1995), 'रिस्टोरिंग द फ़ैमिली : वाइफ़ मर्डर्स ऐंड मेकिंग ऑफ़ अ सेक्सुअल कॉन्ट्रैक्ट फ़ॉर इण्डियन इमिग्रेंट लेबर इन ब्रिटिश कैरीबियन कॉलोनीज़, 1860–1920', *स्टडीज़ इन हिस्ट्री,* खण्ड 11, अंक 2.

प्रेम चौधरी (1987), 'सोसिओ–इकॉनॉमिक डायमेंशंस ऑफ़ सर्टेन कस्टम्स ऐंड एटीट्यूड्स : वुमॅन ऑफ़ हरियाणा इन द कॉलोनियल पीरियड', खण्ड XXII, अंक 48.

प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, नयी दिल्ली, 1912.

प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, नयी दिल्ली, फ़रवरी, 1910.

फ़्रेमेंटल, प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, नयी दिल्ली, 1912.

बनारसी दास (1943), *अर्ध कथानक,* बॉम्बे.

बृजलाल (1985), 'कुंती'ज़ क्राई : इण्डेंचर वुमॅन इन फ़ीज़ी प्लांटेशन', *इण्डियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यु,* खण्ड 22, अंक 1.

बृज वी लाल, *चलो जहाज़ी : ए जर्नी थ्रो इंडेंचर इन फ़ीज़ी, फ़ीज़ी म्यूज़ियम,* सूवा.

बृज वी. लाल (1980), *लीव्ज़ ऑफ़ बनयान ट्री : ओरिजिन ऐंड बैकग्राउंड ऑफ़ फ़ीज़ीज नार्थ इण्डिया इण्डेंचर्ड इमिग्रैंट्स 1879–1916,* ऑस्ट्रेलियन नैशनल युनिवर्सिटी, कैनबरा.

.... (2004), *गिरमिटिया, द ओरिजिन ऑफ़ द फ़ीज़ी इण्डियंस,* लौटका.

भिखारी ठाकुर रचनावली (2005), (सं) नागेंद्र प्रसाद सिंह, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना.

मरीना कार्टर ऐंड क्रिस्पिन बेट्स (2010), 'एम्पायर ऐंड लोकैलिटी : अ ग्लोबल डायमेंशन टू द 1857 इण्डियन ऑपराइज़िंग', *जर्नल ऑफ़ ग्लोबल हिस्ट्री,* खण्ड 5, अंक 1, मार्च.

मुकुल मुखर्जी (1983), इम्पैक्ट ऑफ़ मॉडर्नाइज़ेशन ऑन वुमंस ऑक्युपेशन : अ केस स्टडी ऑफ़ द रईस हस्किंग इंडस्ट्री ऑफ़ बंगाल, *इण्डियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू,* खण्ड 20 : 27–45.

मोंडल (2002), 'द एम्बलेमटिक्स ऑफ़ जेण्डर ऐंड सेक्सुअलिटी इन इण्डियन नैशनलिस्ट डिस्कोर्स', *मॉडर्न एशियाई स्टडीज़,* 36.

रिपोर्ट ऑन नेटिव न्यूज़पेपर्स (आगे से आरएनएन), यूपी, अगस्त, 1908.

रिपोर्ट ऑफ़ द थर्टींथ आईएएनसी, 1915 (बॉम्बे, 1916).

लक्ष्मण सिंह (1916), *कुलीप्रथा अर्थात् बीसवीं शताब्दी की गुलामी,* प्रकाशक स्वामी नारायण मिश्र, प्रताप कार्यालय, कानपुर.

शकुंतला राव (1999), 'वुमॅन–एज़–सिंबल : द इंटरसेक्शन ऑफ़ आइडेंटिटी पॉलिटिक्स, जेण्डर ऐंड इण्डियन नैशनलिज़म', वुमंस स्टडीज़ इंटरनेशनल फोरम.

सात जून का पत्र 1915; राँची, इ.एल.एल. अहमद, सेक्रेटरी जीओबी ऐंड ओडीशा, म्युनिसिपल डिपार्टमेंट टू सेक्रेटरी, जीओआई, सी ऐंड आई, एमिग्रेशन, (ए) प्रोसीडिंग, एन ओ एस 43, दिसम्बर, 1915.

स्मित सेन (1999), *वुमॅन ऐंड लेबर इन लेट कॉलोनियल इण्डिया : द बंगाल जूट इण्डस्ट्री,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

सिडनी मिंट्ज़ (1985), *स्वीटनेस ऐंड पॉवर : द प्लेस ऑफ़ शुगर इन मॉडर्न हिस्ट्री,* पेंगुइन, न्यूयॉर्क.

सीआईडी, यूपी, 20 अप्रैल, 1915, यूपी गवर्नमेंट टू मद्रास गवर्नमेंट, मद्रास, पब्लिक ऑर्डिनरी सीरीज, जीओएन 1331, 13 सितम्बर, 1915.

सी.एफ.ऐंड्रूज़ और डब्ल्यू.डब्ल्यू. पिअरसन (1916), *रिपोर्ट ऑन इण्डेंचर्ड लेबर इन फ़ीजी : एन इण्डिपेंडेंट इन्क्वारी,* इलाहाबाद.

सी.एफ.जोसफ़ लेलीवेल्ड (2011), *ग्रेट सोल : महात्मा गाँधी ऐंड हिज़ स्ट्रगल विद इण्डिया,* हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इण्डिया, नयी दिल्ली.

सुजाता पटेल (1988), 'कंस्ट्रक्शन ऐंड रिकंस्ट्रक्शन ऑफ़ वुमॅन इन गाँधी', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 23, अंक 8, 20 फ़रवरी, 1988.

सुरुचि थॉपर (1993), 'वुमॅन एज़ एक्टिविस्ट; वुमॅन एज सिम्बल्स : अ स्टडी ऑफ़ द इण्डियन नैशनलिस्ट मूवमेंट', *फ़ेमिनिस्ट रिव्यु,* 44.

सुरेंद्र भाना (1991), *इण्डेंचर्ड इण्डियन इमिग्रैंट्स टू नटाल, 1860–1902,* रोमिला ऐंड कम्पनी, नयी दिल्ली.

सरोजिनी नायडू का भाषण 'गिरमिट दिवस : कमेमोरेटिंग 125 इयर्स ऑफ़ गिरमिटियाज़ इन फ़ीज़ी', नामक पुस्तिका में संकलित किया गया.

ह्यू टिंकर (1974), *अ न्यू सिस्टम ऑफ़ स्लेवरी : द एक्सपोर्ट ऑफ़ इण्डियन लेबर ओवरसीज़, 1830–1920,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.